परिणीता

मूल लेखक—

शरत्‌चन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक—

निहालचन्द वर्म्मा

प्रथमवार] सन् १९४५ [मूल्य १।)

प्रकाशक—
ओम्प्रकाश वेरी
विद्या-मंदिर
K २४।१८ रामघाट
बनारस।

मुद्रक—
शिवप्रसाद गुप्त,
जॉब प्रेस, कर्णघण्टा,
काशी।

परिणीता

१

लक्ष्मण की छाती में जब शक्ति-बाण लगा था, तब उनका चेहरा अवश्य ही म्लान हो गया था। परन्तु गुरुचरण का चेहरा तब शायद उससे भी अधिक म्लान दिखाई दिया था जब कि सवेरे ही उनके अन्तःपुर से यह समाचार आया कि उनकी स्त्री ने अभी अभी बिना किसी बाधाविघ्न के पाँचवीं कन्या को जन्म दिया है।

गुरुचरण बैंक में साठ रुपये की नौकरी करते हैं, क्लर्क हैं। उनका शरीर किराये की गाड़ी के घोड़े की तरह दुबला-पतला है, आंखों और चेहरे पर भी उनके वैसा ही एक तरह का निष्काम निर्विकार निर्लिप्त भाव है। फिर भी, इस भयंकर शुभ-संवाद से आज उनके हाथ का हुक्का हाथ ही में रह गया। वे फटे पुराने पैतृक तकिये के सहारे बैठ गये और एक गहरी-सी ठण्डी सांस लेने की भी उनमें ताकत न रही।

इस शुभ सम्वाद को लाई थी उनकी तीसरी लड़की दस वर्ष की अन्नाकाली। उसने कहा—"बाबू जी, चलो न, देख आओ।"

लड़की के चेहरे की ओर देखकर गुरुचरण ने कहा—"बिटिया, एक गिलास पानी तो ले आ, पीऊँगा।" लड़की पानी लाने चली गई। उसके चले जानेपर गुरुचरणको सबसे पहले याद आई सौरी के तरह तरह के खर्चों की बात। उसके बाद, भीड़ के दिनों में स्टेशन पर गाड़ी आने पर दरवाजा खुला पाते ही थर्ड क्लास के यात्री जैसे अपना बोरिया-बसना लेकर पागल की तरह लोगों को रौंदते हुए भीतर घुसते और मारो-मारो शब्द आदि होता है उसकी बात, इसी प्रकार की और भी दुश्चिन्तायें उसके दिमाग में चक्कर काटने लगीं। याद आ गया कि पिछले साल दूसरी कन्या के शुभ-विवाह में उनको अपना बहू बाजार वाला पैतृक मकान तक गिरवी रखना पड़ा था, जिसका कि अभी छः महीने का सूद चुकाना बाकी है। दुर्गा पूजा आने में छः महीने ही भर की देर है—मझली लड़की के घर सौगात भेजनी है। आफिस में कल रात को आठ बजे तक डेबिट् क्रेडिट (जमा खर्च) मिली नहीं है, आज बारह बजे के भीतर विलायत हिसाब भेजना है। कल बड़े साहब ने हुक्म सुना दिया है कि मैले कपड़े पहन कर कोई भी आफिस नहीं आ सकेगा। जो मैले कपड़े पहन कर आयेगा उसे जुरमाना होगा, और मजा यह कि पिछले हफ्ते से धोबी का पता ही नहीं चलता कि वह क्या हुआ? घर गृहस्थी के आधे कपड़े उसीके पास हैं, कहीं लेकर चम्पत न हो गया हो? गुरुचरण से अब तकिए के सहारे बैठा नहीं गया। वह हुक्का एक तरफ रख कर लेट गये। मन ही मन कहने लगे—भगवान्, इस कलकत्ता शहर में हर रोज न जाने कितने आदमी घोड़ा गाड़ी के नीचे दब कर बेमौत मर जाया

करते हैं, तुम्हारे चरणों में क्या वे मुझ से भी अधिक अपराधी हैं ? हे दयामय ! तुम्हारी दया से एक भारी-सी मोटर गाड़ी भी यदि मेरी छाती के ऊपर से निकल जाती तो कैसा अच्छा होता !

अन्नाकाली पानी ले आई, बोली—उठो पानी पी लो। गुरुचरण ने उठ कर पानी का पूरा लोटा एक साथ पी लिया और बोले—"ओफ, जा बिटिया, लोटा ले जा।"

लड़की के चले जाने पर गुरुचरण फिर लेट गये।

ललिता ने कमरे में आ कर कहा—'मामा जी, चाय लाई हूँ, उठो।"

चाय के नाम से गुरुचरण फिर एक बार उठ बैठे। ललिता के चेहरे की ओर देख कर मानो उनकी धधकी आग बुझ गयी, बोले—"रात भर जगी है बेटी, आ मेरे पास आकर जरा बैठ जा।"

ललिता लजीली हँसी हँसती हुई पास आकर बैठ गयी और बोली—"मैं रात को अधिक नहीं जगी मामा जी।"

इस जीर्ण-शीर्ण गुरुभार ग्रसित अकाल वृद्ध मामा के हृदय की छिपी हुई पीड़ा को इस घर में और कोई नहीं समझता।

गुरुचरण ने कहा—न सही, तू आ, मेरे पास तो आ। ललिता के पास बैठते ही गुरुचरण ने सहसा उसके माथे पर हाथ रख कर कहा—"अपनी इस बिटिया को यदि राजा के घर दे सकता, तो समझता कि हाँ, एक अच्छा काम किया है।"

ललिता सिर झुकाये ही चाय ढालने लगी। गुरुचरण बोले—क्यों बिटिया, तुझे अपने इस दुखी मामा के घर आकर रात-दिन केवल मेहनत ही करनी पड़ती है, क्यों ?" ललिता ने सिर हिलाते हुये कहा—'दिन-रात मेहनत क्यों करने लगी मामा जी; सब काम करते हैं, मैं भी करती हूँ।"

अब गुरुचरण जरा हँस दिये। चाय पीते हुये बोले—' अच्छा ललिता, आज भोजन का क्या होगा।"

ललिता ने मुँह उठा कर कहा—क्यों मामा जी, मैं बनाऊँगी न।"

गुरुचरण ने ताज्जुब करते हुये पूछा—"तू कैसे बनायेगी बिटिया, तुझे क्या बनाना आता है?"

'आता है मामा जी मैंने माता जी से सब सीख लिया है।"

गुरुचरण ने चाय का प्याला नीचे रख कर कहा—' सच?"

' सच। माता जी दिखा-बता देती हैं—मैंने तो कई बार भोजन बनाया है।"

इतना कह कर उसने फिर-सिर झुका लिया। उसके झुके हुये सिर पर हाथ रखकर गुरुचरण ने मन ही मन आशीर्वाद दिया। उनकी भारी चिन्ता दूर हो गई।

गुरुचरण का मकान गली के ऊपर ही है। चाय पीते ही खिड़की में से बाहर नजर पड़ते ही उन्होंने चिल्ला कर कहा—"शेखर हो क्या? सुनो, सुनो।"

एक लम्बे कद का बलवान सुन्दर युवक भीतर चला आया।

गुरुचरण ने कहा—' बैठो, कहो आज तुमने अपनी चाची की सवेरे की करतूत तो क्या सुनी ही होगी।"

शेखर ने मुस्कराते हुये कहा—"करतूत क्या कर डाली लड़की हुई है, यही न?"

गुरुचरण ने एक गहरी सांस ली और बोले—तुमने तो कह दिया 'यही न?' पर वह 'यही क्या है, सो तो सिर्फ मैं ही जानता हूँ।"

शेखर ने कहा—ऐसा न कहा कीजिये चाचा जी, चाची सुनेंगी तो उन्हें बड़ा दुःख होगा। इसके सिवाय भगवान ने

जिसको भेजा है, उसको लाड़ प्यार के साथ स्वीकार करना ही चाहिये।

गुरुचरण कुछ देर तक चुप रह कर बोले—लाड़-प्यार करना चाहिये, सो तो मैं भी जानता हूं, लेकिन बेटा, भगवान भी तो न्याय नहीं करते! मैं गरीब हूँ, मेरे घर इतनी दया क्यों? रहने का यह मकान तो तुम्हारे बाप के पास गिरवी रक्खा है। खैर कोई बात नहीं, इसके लिये मुझे दुःख भी नहीं शेखर!—पर यह तो विचार कर देख बेटा, यह जो हमारी ललिता है,—जिसका मां बाप कोई नहीं है. सोने की पुतली है यह, यह तो सिर्फ राजा के घर ही शोभा पा सकती है,—कैसे इसे हृदय थाम कर चाहे जिसको सौंप दूँ, बता? राजा के मुकुट पर जो कोहिनूर चमकता है, वैसे ढेरों कोहिनूरों के साथ तौलने पर भी मेरी इस बिटिया की कीमत नहीं हो सकती। लेकिन इस बात को समझेगा कौन? पैसे की कमी के कारण मुझे ऐसे रत्न को गवाँ देना पड़ेगा। बताओ तो बेटा तब कैसा तीर-सा कलेजे पर लगेगा? यह तेरह साल की हो चुकी पर इस समय मेरे पास तेरह पैसे भी नहीं हैं जिनसे कोई सम्बन्ध ठीक कर सकूँ।

उपरोक्त बात कहते-कहते गुरुचरण की आंखों में आंसू भर आये। शेखर चुपचाप बैठा रहा।

गुरुचरण कहने लगे—शेखरनाथ, देखना तो बेटा, तुम्हारे मित्रों में अगर कोई इस लड़की का कुछ किनारा कर सके। सुना है आज कल बहुत से लड़के रुपयों की तरफ उतना ध्यान नहीं देते, केवल लड़की देखकर ही पसन्द कर लेते हैं। ऐसा ही कोई लड़का भाग्य से यदि मिल जाय शेखर तो मैं सच कहता हूँ तुमसे, मेरे आशीर्वाद से तुम राजा हो जाओगे। और

क्या कहूँ बेटा, तुम्हारे पिता मुझे छोटे भाई के समान ही समझते हैं।"

शेखर ने सिर हिलाकर कहा, "अच्छी बात है, मैं तलाश करूँगा।"

गुरुचरण बोले—"भूलना मत बेटा, निगाह रखना। ललिता तो आठ साल की उम्र से तुम्हारे ही पास पढ़-लिख कर इतनी बड़ी हुई है, तुम तो जानते ही हो कि यह कैसी बुद्धिमती है, कैसी शान्त-शिष्ट है। जरा-सी है फिर भी आज से यही भोजन बनायेगी, खिलायेगी-पिलायेगी, सब कुछ इसी के ऊपर है।"

इसी समय ललिता ने जरा आंखें उठा कर देखा, और नीचे को निगाह कर ली। उसके ओठों के दोनों किनारे जरा फैल भर गये। गुरुचरण ने एक गहरी सांस लेकर कहा—"इसके पिता ने क्या कुछ कम व्यापार किया था? पर सब कुछ इस प्रकार दान कर गये कि अपनी कन्या के लिये भी कुछ नहीं छोड़ गये।"

शेखर चुप रहा, गुरुचरण फिर स्वयं ही कहने लगे—"और यह भी कैसे कहा जाय कि कुछ छोड़ नहीं गये? उन्होंने जितने आदमियों के जितने कष्ट दूर किये हैं, उसका फल केवल इस लड़की के लिये छोड़ गये हैं, नहीं तो क्या इतनी-सी लड़की ऐसी अन्नपूर्णा हो सकती थी? तुम्हीं बताओ न शेखर, सच है या नहीं?

शेखर हँसने लगा। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

वह उठने लगा तो गुरुचरण बोले—"इतने सवेरे ही कहां जा रहे हो?"

शेखर ने कहा—"बैरिस्टर के घर,—एक केस है।" कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ। गुरुचरण ने फिर एक बार याद

दिलाते हुये कहा—"जरा ख्याल रखना बेटा, ललिता देखने में जरा श्याम वर्ण की अवश्य है, पर ऐसी आंखें, ऐसा चेहरा, ऐसी हँसी,—इतनी दया-ममता दुनियां में ढूँढ़ने पर भी कहीं नहीं मिलेगी।"

शेखर सिर हिलाता और हँसता हुआ बाहर चला गया।

इस लड़के की अवस्था पचीस छब्बीस वर्ष की होगी। एम० ए० पास करके इतने दिनों तक और भी पढ़ लिख रहा था। पिछले साल अटर्नी हुआ है। इसके पिता नवीनचन्द्र गुड़ के काम में लखपती होकर कुछ साल से व्यापार छोड़ कर, घर बैठे तिजारत कर रहे हैं। बड़ा लड़का अविनाशचन्द्र वकील है। छोटा शेखर अटर्नी हो गया है। उनका भारी तिमञ्जिला मकान महल्ले में सबसे ऊँचा है। गुरुचरण की छत से उसकी छत मिली होने से दोनों कुनबों में बहुत अपनायत हो गयी है। घर की स्त्रियां इस छत के रास्ते से उस छतपर और उस छत से इस छत पर आया जाया करती हैं।

शेखर के ब्याह की बात-चीत श्यामबाजार के एक बड़े आदमी के यहाँ बहुत दिनों से चल रही थी। उस दिन जब वह शेखर को देखने आये तो उन लोगों ने चाहा कि आगामी माघ महीने में ही कोई शुभ दिन दिखाकर ब्याह पक्का कर दिया जाय। लेकिन शेखर की मा ने स्वीकार नहीं किया। दासी से उसने कहला भेजा कि लड़का खुद देखकर पसन्द कर लेगा। तब विवाह पक्का होगा।

नवीनचन्द्र की दृष्टि केवल धन के ऊपर थी, उन्होंने अपनी स्त्री की इस संशयात्मक बात से अप्रसन्न होकर कहा—"यह कैसी बात है? लड़की तो पहले ही देखी जा चुकी है। बातचीत पक्की हो जाने दो, आशीर्वाद वाले दिन और अच्छी तरह देख ली जायेगी।"

इस पर भी गृहिणी सहमत न हुई, पक्की बात नहीं कहने दी। नवीनचन्द्र ने उस दिन गुस्से में आकर बहुत देर से भोजन किया और दोपहर का आराम बाहरवाली बैठक में ही किया।

शेखरनाथ जरा शौकीन तबीयत का आदमी है। वह तिमं-जले पर जिस कमरे में रहता है। वह बहुत ही सजा हुआ है। पाँच छः दिन बाद एक रोज तीसरे पहर उस कमरे में एक बड़े शीशे के सामने शेखर लड़की देखने जाने के लिए तैयार हो रहा था, इतने में ललिता भीतर चली आई। कुछ देर चुपचाप खड़ी देखते रहने के बाद उसने पूछा,—"वहू देखने जा रहे हो न ?"

शेखर ने पीछे फिरकर उसकी ओर देखते हुए कहा—"आ गई ? अच्छा हुआ, खूब अच्छी तरह सजा तो दो जिससे वहू को मैं पसन्द आ जाऊँ।"

ललिता हँसने लगी। बोली—"अभी तो मुझे फुरसत नहीं है शेखर भइया, —मैं रुपये लेने आई हूँ।" यह कहते हुए तकिये के नीचे से चाबियों का गुच्छा उठा कर ड्रायर खोला और गिन-गिनाकर कुछ रुपये निकाले और आँचल में बान्धते हुए बहुत ही धीरे से मानो मन ही मन कहा—"रुपये तो आवश्यकता पड़ने पर ले ही जाया करती हूँ, परन्तु यह चुकेंगे कैसे ?

शेखर ने एक तरफ के बालों को ढंग के साथ ऊपर की ओर उठाते हुए घूमकर कहा—"चुकेंगे या चुक रहे हैं ?"

ललिता समझ न सकी, देखती की देखती रह गई।

शेखर ने कहा—देख क्या रही हो, समझी नहीं ?"।

ललिता ने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

"और भी जरा बड़ी हो जाओ तो समझोगी।" कहकर शेखर जूता पहन कर बाहर चला गया।

रात को शेखर एक कोच पर चुपचाप लेटा हुआ था, इतने में माता कमरे में आ गई, वह झटपट उठकर बैठ गया। उसकी माता एक चौकी पर बैठकर बोली—"लड़की कैसी है, देख आया ?"

शेखर की माता का नाम है भुवनेश्वरी। उसकी अवस्था पचास वर्ष के अन्दाज की होगी। पर शरीर का गठन ऐसा सुन्दर है कि वह देखने में पैंतीस-छत्तीस साल से अधिक की नहीं जान पड़ती और उस सुन्दर आवरण के अन्दर जो मातृ हृदय है, वह और भी नवीन—और भी कोमल है। वे गँवइ गाँव की लड़की थीं, गाँव में पैदा होकर वहीं बड़ी हुई थीं, परन्तु शहर में आकर भी वह एक दिन के लिये भी अशोभनीय नहीं मालूम हुई। शहर की चञ्चलता, सजीवता और आचार व्यव-हार को जैसे उन्होंने आसानी से सीख लिया था, वैसे ही जन्म-भूमि की निबड़ निस्तब्धता और माधुर्य को भी उन्होंने नहीं खोया था। माता शेखर के लिये कितने गर्व की चीज है, यह बात उसकी माता नहीं जानती। जगदीश्वर ने शेखर को अनेक बस्तुएँ दी हैं। अनन्य साधारण स्वास्थ्य, रूप, ऐश्वर्य, बुद्धि,—परन्तु इस जननी की सन्तान हो सकने के सौभाग्य को वह मन, वचन, काया से भगवान का सबसे बड़ा दान समझता है।

मा ने कहा—"बहुत अच्छी कहकर चुप रह गया जो?"

शेखर फिर जरा हँसकर नीची निगाह किये ही बोला—"तुमने जो पूछा सो ही तो बताया।"

माता हँस पड़ी। बोली—"कहाँ बताया? रंग कैसा है, गोरा? किसके समान है? अपनी ललिता के?"

शेखर ने मुँह उठाकर कहा—"ललिता तो काली है मा—उसका रंग इसकी अपेक्षा गोरा है।"

"मुँह-आखें कैसी हैं?"

"बुरी नहीं।"

"तो कह दूँ तेरे बाबू जी से?"

शेखर चुप हो गया।

माता क्षणभर पुत्र के मुँह की ओर देखती रही, उसके बाद सहसा पूछ बैठी—"क्यों रे लड़की पढ़ी-लिखी कैसी है ?"

शेखर ने कहा—"सो तो पूछा नहीं मा।"

अत्यन्त आश्चर्य में आकर मा ने कहा,—"पूछा नहीं ?"

शेखर ने हँसकर कहा—"नहीं मा इस बात की मुझे याद ही नहीं रही।"

लड़के की बात सुनकर इस बार वे अत्यन्त विस्मित होकर उसके चेहरे की ओर देखती रहीं, फिर हँसकर बोलीं—"तो मालूम होता है, तू वहाँ ब्याह नहीं करेगा।"

शेखर कुछ कहना चाहता था, लेकिन उसी समय ललिता के आ जाने से चुप रह गया। ललिता धीरे से भुवनेश्वरी के पीछे आकर खड़ी हो गई। उन्होंने बायें हाथ से उसे सामने की ओर खींच कर कहा—"क्या है बिटिया ?"

ललिता ने चुपके से कहा—"कुछ नहीं मा !"

ललिता पहले भुवनेश्वरी को मौसी कहा करती थी, पर उन्होंने मना करके कहा था, 'मैं तो तेरी मौसी नहीं होती ललिता, मा होती हूँ—तब से वह उन्हें मा कहती है। भुवनेश्वरी ने उसे और भी छाती के पास खींचकर लाड़ से कहा—"कुछ नहीं ? तो शायद मुझे सिर्फ एक बार देखने आई है ?"

ललिता चुप रही।

शेखर ने कहा—'देखने आई है, तो रसोई कब बनायेगी ?"

मा ने कहा—"रसोई क्यों बनायेगी ?"

शेखर ने आश्चर्य के साथ पूछा—"तो फिर इसके यहाँ रसोई कौन बनायेगा मा ? इसके मामा ने भी उस दिन कहा था, ललिता रसोई आदि का सब काम करती है।"

मा हँसने लगी और बोली—"इसके मामा का क्या ठीक है,

जो मुँह में आया सो कह दिया। इसका अभी ब्याह नहीं हुआ इसके हाथ की खायगा कौन? अपनी मिसरानी को भेज दिया है, वही बनायेगी,—हमारे यहाँ बड़ी बहू बना रही है,—आज कल दोपहर में मैं उन्हीं के यहाँ खाती हूँ।"

शेखर समझ गया कि मा ने इस दुखी परिवार का गुरुभार अपने ऊपर ले लिया है। वह एक सन्तोष की साँस लेकर चुप रह गया। महीने-भर बाद एक दिन सन्ध्या को शेखर अपने कमरे में कोच पर अधलेटो हालत में पड़ा हुआ एक अंग्रेजी का उपन्यास पढ़ रहा था। काफी मन लगा हुआ था, इतनेमें ललिता कमरे में आकर तकिये के नीचे से चाभी का गुच्छा निकालकर आवाज करती हुई दराज खोलने लगी। शेखर ने किताब पर से निगाह बिना हटाये ही कहा—"क्या है?"

ललिता ने कहा—"रुपये ले रही हूँ।"

शेखर हूँ' कहकर पढ़ने लगा। ललिता आँचल में रुपये बान्धकर उठ खड़ी हुई। आज वह सज-धज कर आई थी, उसकी इच्छा थी कि शेखर उसकी ओर देखे। वह बोली—"दस रुपये ले रही हूँ शेखर भइया!"

शेखर ने 'अच्छा' कह दिया पर उसकी तरफ देखा नहीं। अंत में और कोई उपाय न देख वह इधर-उधर चीज-वस्त धरने-उठाने लगी, और इस प्रकार झूठ-मूठ की देर करने लगी। लेकिन किसी प्रकार भी कोई नतीजा नहीं निकला। तब वह धीरे से बाहर चली गई। लेकिन बाहर चली जाने ही से जा थोड़े ही सकती थी, फिर दरवाजे के पास आकर खड़ा हो जाना पड़ा। आज और सबों के साथ वह थियेटर देखने जायेगी।

इतना वह अच्छी तरह जानती है कि शेखर की बिना आज्ञा

वह कहीं नहीं जा सकती,—किसी ने उसे यह बात बताई नहीं थी और न इस बात का उसके मन में कोई तर्क ही उठा कि क्यों और किस लिये, किन्तु जीवनमात्र में स्वाभाविक सहज बुद्धि होती है, उसी बुद्धि ने उसे सिखा दिया था। और कोई चाहे जो कर सकता है, किन्तु वह नहीं कर सकती, कहीं नहीं जा सकती। न तो वह स्वाधीन है और न मामा मामी की आज्ञा ही उसे काफी है। उसने दरवाजे की ओट में से धीरे से कहा—"हम लोग थिएट रदेखने जा रहे हैं।"

उसका मीठा कंठस्वर शेखर के कान तक नहीं पहुँचा, उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

ललिता ने फिर और जरा जोर से कहा—सब कोई मेरे लिये खड़ी हैं।

अब शेखर ने सुन लिया, पुस्तक को एक ओर रखकर पूछा—"क्या है ?"

ललिता ने जरा रूठकर कहा—"इतनी देर में सुनाई दिया! हम लोग थियेटर देखने जा रही हैं।"

शेखर ने कहा—'हम लोग', कौन-कौन ?

"मैं, अन्नाकाली, चारुबाला, चारुबाला का भाई, उसके मामा।"

"मामा कौन ?"

ललिता बोली—उनके मामा हैं गिरीन बाबू। पाँच दिन, हुए मुँगेर से आये हैं, यहाँ बी० ए० पढ़ेंगे,—अच्छे आदमी हैं।

"वाह! नाम, धाम, पेशा—मालूम होता है खूब परिचय हो गया है! इसी से चार-पाँच दिनों से सर की चुटिया तक नहीं दिखाई दी,—शायद ताश खेला जा रहा होगा ?

सहसा शेखर के बात करने का ढंग देखकर ललिता डर

गई। उसने सोचा भी नहीं था कि ऐसा कोई प्रश्न उठ सकता है। वह चुप रही।

शेखर ने कहा—"इधर कई दिनों से खूब ताश हो रहा था न ?"

ललिता ने घूँट-सा भरकर मृदु स्वर में कहा—"चारु ने कहा था।"

"चारु ने कहा था, क्या कहा था ? कहकर शेखर ने मुँह उठा कर देखा, फिर कहा—अरे, एक दम कपड़े-अपड़े पहनकर तैयार होकर आना हुआ !—अच्छा जाओ।

ललिता गई नहीं, वहीं चुपचाप खड़ी रही।

बगलवाली मकान की चारुबाला उसकी बराबर की और सहेली है। वे लोग ब्रह्मसमाजी हैं। शेखर केवल एक गिरीन्द्र को छोड़कर और सबको जानता है। गिरीन्द्र पाँच सात साल पहले कुछ दिनों के लिये इधर आया था। इतने दिनों से बाँकीपुर में पढ़ रहा था। फिर कलकत्ता आने की जरूरत भी नहीं हुई और न आया ही। इसी से शेखर उसे पहचानता नहीं था। ललिता को फिर भी खड़ी देखकर उसने कहा—"झूठमूठ क्यों खड़ी हो, जाओ।" और अपनी किताब उठा ली।

अन्दाज पाँच मिनट चुपचाप खड़ी रहने के बाद ललिता ने धीरे से पूछा—"जाऊँ ?"

"जाने को कह तो दिया ललिता।"

शेखर का रुख देखकर ललिता का थियेटर देखने का शौक जाता रहा, लेकिन उसके जाये बिना भी नहीं बनता।

बात हो चुकी थी कि वह आधा खर्च देगी और चारु के मामा आधा खर्च करेंगे।

चारु के घर सब कोई अधीर होकर ललिता का रास्ता देख

रहे हैं और ज्यों ज्यों देर हो रही है, त्यों-त्यों उनकी अधीरता भी बढ़ती जा रही है। यह बात उसे भी मालूम हो रही थी, लेकिन कोई उपाय उसे ढूँढ़े नहीं मिल रहा है। बिना आज्ञा चली जाय, इतना उसमें साहस नहीं था। फिर दो तीन मिनट चुप रहकर बोली—"सिर्फ आज भर के लिए,—जाऊँ ?"

शेखर ने किताब एक तरफ फेंकते हुए धमका कर कहा—"परेशान मत करो ललिता, जाने का मन हो तो जाओ, भलाई-बुराई समझने लायक तुम्हारी काफी उम्र हो चुकी है।"
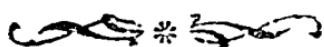
ललिता चौंक पड़ी। शेखर की डाँट-डपट खाना उसके लिए नया नहीं है, इसका उसे पूरा अभ्यास था, मगर इधर दो तीन साल के भीतर ऐसी डाँट उसने कभी नहीं सुनी। उधर उसकी मित्र मण्डली बाट देख रही है, वह खुद भी कपड़े पहन कर तैयार है, इस बीच में रुपये लेने आई तो इस विपत्ति का सामना करना पड़ा, अब उन लोगों के सामने वह क्या करेगी ?

कहीं जाने-आने के लिए शेखर की ओर से पूरी स्वाधीनता थी। इसी जोर से वह कपड़े लत्ते पहनकर तैयार होकर आई थी। अब उसकी वह स्वतन्त्रता ही इस प्रकार अप्रिय ढंग से गायब हो गई सो बात नहीं है; बल्कि जिस कारण से ऐसा हुआ वह कारण इतना लज्जामय था कि आज तेरह वर्ष की उम्र में पहले पहले उसका अनुभव करके वह अन्दर ही अन्दर मर मिटने लगी। मारे अभिमान के आँखों में आंसू भरकर वह और भी अन्दाज पाँच मिनट तक चुपचाप खड़ी रहकर आंखें पोंछती हुई चली गई। अपने घर जाकर उसने दासी द्वारा अन्नाकाली को बुलवाकर उसके हाथ में दस रुपये देकर कहा—आज तुम लोग चली जाओ काली; मेरा जी अच्छा नहीं है,—सहेली से कह देना मैं नहीं जा सकूँगी।

काली ने पूछा—"जी अच्छा नहीं है जीजी ?"

"सिर में दर्द हो रहा है, जी मचला रहा है,—बहुत तबीयत खराब हो रही है।" कहकर वह बिछौने पर एक करवट से लेट गई। इसके बाद चारु ने आकर मनाया, समझाया, जिद की मामा से सिफारिश कराई,—लेकिन किसी भी प्रकार उसे राजी नहीं कर सकी।

अन्नाकाली हाथ में दस रुपये पाकर जाने के लिए छटपटा रही थी कहीं इस झंझट में जाना न हो सके, इस डर से चारु को अलग ले जाकर उसने रुपये दिखाते हुए कहा—"जीजी का जी अच्छा नहीं है, वे न जायँगी तो क्या हुआ, चारु जीजी ? मुझे रुपये दे दिये हैं, ये देखो—चलो, हम लोग चलें।" चारु समझ गई, अन्नाकाली उम्र में छोटी होनेपर बुद्धि में किसी से कम नहीं। वह राजी होकर उसे साथ लेकर चली गई।

३

चारुबाला की मा मनोरमा के लिये ताश खेलने से बढ़कर प्रिय वस्तु इस संसार में और कोई भी न थी। लेकिन खेल का नशा जितना था, बुद्धि उतनी नहीं थी। उसकी यह त्रुटि ललिता को पाकर दूर हो जाती थी। वह बहुत अच्छा खेल जानती है। मनोरमा के भाई गिरीन्द्र के आने के बाद से इधर दोपहर के बाद से उनके घर में खूब जोरों का ताश का खेल होता था। गिरीन्द्र पुरुष ठहरा, वह अच्छा खेल जानता है, इसलिए उसके साथ खेलने के लिए मनोरमा को ललिता की परम आवश्यकता है। थियेटर देखने के दूसरे दिन जब ललिता मनोरमा के घर नहीं पहुँची, तो उन्होंने उसे ले आने के लिए अपनी दासी को भेजा। ललिता उस समय में एक मोटी कापी पर किसी अंग्रेजी किताब से अनुवाद कर रही थी, वह नहीं गई। उसकी सहेली भी आई लेकिन वह भी कुछ न कर सकी। अन्त में मनोरमा खुद आई और उसकी कापी वगैरह एक ओर फेंककर बोली—"चल, उठ। बड़ी होने पर तुझे मजिस्ट्रेट नहीं बनना है, ताश तो शायद खेलनी भी पड़ेगी,—चल।"

अब ललिता बड़े भारी संकट में पड़ गई और रुआंसी सी होकर बोली —"आज तो किसी प्रकार भी जाना नहीं हो सकता बल्कि कल आ जाऊँगी।"

मनोरमा ने एक न सुनी, अन्त में उनकी मामी से कहकर लिवा ही ले गई। इस प्रकार उसे आज भी जाकर गिरीन्द्र के विरुद्ध ताश खेलना पड़ा। लेकिन खेल जमा नहीं। वह उतना मन नहीं लगा सकी, जब तक बैठी अनमनी-सी रही; और शीघ्र ही उठ खड़ी हुई। जाते समय गिरीन्द्र ने कहा—"मेरी तबीयत बड़ी खराब हो रही थी।"

ललिता ने सिर हिला मृदु स्वर में कहा—"नहीं मेरी तबीयत बड़ी खराब हो रही थी।"

गिरीन्द्र ने हँसकर कहा—"अब तो तबीयत ठीक हो गई, चलिए कल चला जाय।"

"नहीं नहीं, कल मुझे फुरसत नहीं मिलने की।" कहकर ललिता शीघ्रता से चली गई। आज केवल शेखर के भय से ही उसका मन खेल में नहीं लग रहा हो सो बात नहीं, उसे खुद भी बड़ी शर्म आ रही थी।

शेखर के घर की तरह ही इस घर में भी उसका बचपन से जाना आना चला आ रहा है, और घरवालों के सामने जैसे वह रहती है उसी तरह सब के सामने निकलती-बोलती रही है। इसलिये चारु के मामा के सामने भी उसे निकलने और बोलने में कोई संकोच नहीं था। लेकिन, आज गिरीन्द्र के सामने बैठ कर खेलते समय शुरू से अन्त तक उसे बराबर यही मालूम होता रहा कि इन कई दिनों के परिचय में ही गिरीन्द्र उसे जरा कुछ विशेष प्रीति की निगाह से देखने लगा है। पुरुष की प्रीति

की निगाह इतनी बड़ी लज्जा की बात है इस बात की उसने पहले कल्पना भी नहीं की थी।

घर पर जरा देर दिखाई देने के बाद ही वह झटपट शेखर के घर जाकर उसके कमरे में पहुँच गई; और चट से काम में लग गई। बचपन से ही इस कमरे का छोटा-मोटा काम-काज उसका करना पड़ता था। पुस्तकें आदि उठाकर ठीक से रखना, टेबिल सजा देना, दावात-कलम-कागज झाड़-पोंछकर ठीक ढंग से रखना-करना,—ये सब काम उसके बिना किये और कोई नहीं करता था। छः सात दिन की लापरवाही से बहुत-सा काम जम गया था। उन सब त्रुटियों को वह शेखर के आने के पहले ही दूर कर देने के लिए कमर कसकर लग गई थी।

ललिता भुवनेश्वरी को मा कहती थी। समय पाते ही वह उसके पास रहा करती और वह खुद घर के किसी को गैर नहीं समझती थी, इसलिये और कोई भी उसे गैर नहीं समझता था। आठ वर्ष की अवस्था में ही माता-पिता को खोकर उसने ननिहाल में प्रवेश किया था, तब से वह छोटी बहन की तरह शेखर के आस-पास घूम-फिरकर उससे पढ़ना-लिखना सीखकर बड़ी हो रही है।

शेखर उसे प्यार करते हैं, इस बात को सभी जानते थे। लेकिन इस बात को कोई भी नहीं जानता था कि वह प्यार अब कहाँ तक पहुँच गया है, और तो और ललिता तक को इस बात का पता नहीं था। बचपन से ही सब कोई शेखर से उसे एक ही तरह से इतना अधिक लाड़-प्यार पाते देखते आये हैं कि आज तक उसका कोई भी लाड़ प्यार किसी की निगाह में खटका नहीं, और न इनका कभी कोई आचरण ही किसी की निगाह पर चढ़ा है। इसलिए, यदि कभी किसी दिन इस घर में बहू के रूप में

अब ललिता बड़े भारी संकट में पड़ गई और रुआसी सी होकर बोली—"आज तो किसी प्रकार भी जाना नहीं हो सकता बल्कि कल आ जाऊँगी।"

मनोरमा ने एक न सुनी, अन्त में उसकी मामी से कहकर लिवा ही ले गई। इस प्रकार उसे आज भी जाकर गिरीन्द्र के विरुद्ध ताश खेलना पड़ा। लेकिन खेल जमा नहीं। वह उतना मन नहीं लगा सकी, जब तक बैठी अनमनी-सी रही; और शीघ्र ही उठ खड़ी हुई। जाते समय गिरीन्द्र ने कहा—"मेरी तबीयत बड़ी खराब हो रही थी।"

ललिता ने सिर हिला मृदु स्वर में कहा—"नहीं मेरी तबीयत बड़ी खराब हो रही थी।"

गिरीन्द्र ने हँसकर कहा—"अब तो तबीयत ठीक हो गई, चलिए कल चला जाय।"

"नहीं नहीं, कल मुझे फुरसत नहीं मिलने की।" कहकर ललिता शीघ्रता से चली गई। आज केवल शेखर के भय से ही उसका मन खेल में नहीं लग रहा हो सो बात नहीं, उसे खुद भी बड़ी शर्म आ रही थी।

शेखर के घर की तरह ही इस घर में भी उसका बचपन से जाना आना चला आ रहा है, और घरवालों के सामने जैसे वह रहती है उसी तरह सब के सामने निकलती-बोलती रही है। इसलिये चारु के मामा के सामने भी उसे निकलने और बोलने में कोई संकोच नहीं था। लेकिन, आज गिरीन्द्र के सामने बैठ कर खेलते समय शुरू से अन्त तक उसे बराबर यही मालूम होता रहा कि इन कई दिनों के परिचय में ही गिरीन्द्र उसे जरा कुछ विशेष प्रीति की निगाह से देखने लगा है। पुरुष की प्रीति

की निगाह इतनी बड़ी लज्जा की बात है इस बात की उसने पहले कल्पना भी नहीं की थी।

घर पर जरा देर दिखाई देने के बाद ही वह झटपट शेखर के घर जाकर उसके कमरे में पहुँच गई; और चट से काम में लग गई। बचपन से ही इस कमरे का छोटा-मोटा काम-काज उसका करना पड़ता था। पुस्तकें आदि उठाकर ठीक से रखना, टेबिल सजा देना, दावात-कलम-कागज झाड़-पोंछकर ठीक ढंग से रखना-करना,—ये सब काम उसके बिना किये और कोई नहीं करता था। छः सात दिन की लापरवाही से बहुत-सा काम जम गया था। उन सब त्रुटियों को वह शेखर के आने के पहले ही दूर कर देने के लिए कमर कसकर लग गई थी।

ललिता भुवनेश्वरी को मा कहती थी। समय पाते ही वह उसके पास रहा करती और वह खुद घर के किसी को गैर नहीं समझती थी, इसलिये और कोई भी उसे गैर नहीं समझता था। आठ वर्ष की अवस्था में ही माता-पिता को खोकर उसने ननिहाल में प्रवेश किया था, तब से वह छोटी बहन की तरह शेखर के आस-पास घूम-फिरकर उससे पढ़ना-लिखना सीखकर बड़ी हो रही है।

शेखर उसे प्यार करते हैं, इस बात को सभी जानते थे। लेकिन इस बात को कोई भी नहीं जानता था कि वह प्यार अब कहाँ तक पहुँच गया है, और तो और ललिता तक को इस बात का पता नहीं था। बचपन से ही सब कोई शेखर से उसे एक ही तरह से इतना अधिक लाड़-प्यार पाते देखते आये हैं कि आज तक उसका कोई भी लाड़ प्यार किसी की निगाह में खटका नहीं, और न इनका कभी कोई आचरण ही किसी की निगाह पर चढ़ा है। इसलिए, वह कभी किसी दिन इस घर में बहू के रूप में

स्थान पा सकती है, ऐसी सम्भावना तक किसी के मन में पैदा नहीं हुई—न ललिता के घर और भुवनेश्वरी के मन में।

ललिता ने सोच रखा था कि काम खतम करके शेखर के आने से पहले ही वह चली जायगी, परन्तु अन्यमनस्क होने के कारण घड़ी की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। सहसा दरवाजे के बाहर जूते की मच-मच आवाज सुनकर मुँह उठाकर देखते ही वह एक ओर हटकर खड़ी हो गई।

शेखर ने कमरे में घुसते ही कहा—"आ गई ! तो फिर कल लौटने में कितनी रात हुई थी ?

ललिता ने कुछ उत्तर न दिया।

शेखर एक गद्देदार आराम कुरसी पर सहारा लेकर लेट गया और बोला—"लौटीं कब ? दो बजे ? या तीन बजे ?—मुँह से बात क्यों नहीं निकलती ?"

ललिता फिर भी उसी तरह चुपचाप खड़ी रही।

शेखर नाराज होकर बोला-नीचे जाओ, मा बुला रही हैं।"

भुवनेश्वरी भण्डार घर के सामने बैठी जलपान की तश्तरी लगा रही थीं। ललिता ने पास जाकर कहा—"मुझे बुला रही थीं मा ?"

"नहीं तो।" कहकर उन्होंने ललिता के चेहरे की ओर देखते ही कहा—"चेहरा तेरा ऐसा सूखा-सा क्यों है ललिता ? कुछ खाया-पीया नहीं शायद अभी तक ?"

ललिता ने सिर हिला दिया।

भुवनेश्वरी ने कहा—"अच्छा जा, तू अपने भइया को "जलपान" देकर मेरे पास आ।"

ललिता थोड़ी देर में जलपान की तश्तरी हाथ में लेकर ऊपर जा पहुँची, वहाँ देखा कि शेखर उसी प्रकार आँखें बन्द

करके पड़ा है। आफिस के कपड़े तक नहीं बदले हैं, मुँह-हाथ भी नहीं धोया! पास जाकर वह धीरे से बोली—"जलपान लाई हूँ।"

शेखर ने उसकी ओर नहीं देखा, बोला—"कहीं पर रख जाओ।" लेकिन ललिता ने जलपान की तश्तरी रखी नहीं, हाथ में लिए हुए चुपचाप खड़ी रही।

शेखर बिना देखे ही समझ रहा था कि ललिता गई नहीं है, खड़ी है। दो-तीन मिनट चुप रहकर बोला—"कब तक खड़ी रहोगी ललिता, मुझे अभी देर है, इसे रखकर नीचे जाओ।"

ललिता चुपचाप खड़ी भीतर ही भीतर गुस्सा हो रही थी, वह मीठे स्वर में बोली—"होने दो देर, मुझे भी नीचे कोई काम नहीं।"

शेखर आँखें खोलकर हँसता हुआ बोला—"खैर, मुँह से बात तो निकली! नीचे काम नहीं, घर में तो होगा? कोई एक घर तो तुम्हारा है नहीं ललिता?"

"हाँ, सो तो नहीं है।" कहकर मारे गुस्से के ललिता जल-पान की तश्तरी धम्म से टेबिल पर रखकर शीघ्रता पूर्वक दर-वाजे के बाहर हो गई।

शेखर ने पुकार कर कहा—"सन्ध्या के बाद एक बार आना।"

"सौ-सौ बार मैं ऊपर नीचे नहीं आ जा सकती।" कहती हुई ललिता चली गई।

नीचे पहुँचते ही मा ने कहा—"भइया को जलपान तो दे ही नहीं आई।"

"मुझे भूख लगी है मा, मुझसे अब नहीं जाया जाता, और कोई दे आवे!" ललिता इतना कहकर धम्म से बैठ गई।

मा ने उसके रूठे हुए चेहरे की ओर देखते हुए हँसकर कहा—"अच्छा तो पहले खा लो तब हमारा काम करना, मैं दासी से भिजवा देती हूँ।

ललिता मा की बात का कुछ भी उत्तर न देकर खाने के लिये बैठ गई। वह थियेटर देखने नहीं गई, फिर भी शेखर उस पर बिगड़े, इस गुस्से के कारण चार-पाँच दिन वह शेखर के सामने नहीं गई, और मजा यह कि शेखर के आफिस चले जाने के बाद वह उसके कमरे का कुल काम कर दिया करती थी। शेखर ने अपनी गलती समझ लेने के बाद दो दिन उसे बुलवाया भी, परन्तु वह नहीं गई।

४

एक वृद्ध भिखारी कभी-कभी इस मुहल्ले में भिक्षा मांगने आया करता था. ललिता की उसपर बड़ी दया थी। उस भिखारी के आते ही ललिता उसे एक रुपया दे दिया करती थी। रुपया हाथ में पड़ते ही वह बड़े अ व और असम्भव आशीर्वाद दिया करता था। उसके आशीर्वादों को सुनने में ललिता को बहुत आनन्द प्राप्त होता था। वह कहता, ललिता पहले जन्म में उसकी मा थी, और इस बात को वह ललिता को देखते ही समझ गया था। उसका वह बूढ़ा लड़का आज सवेरे ही दरवाजे पर आ पहुँचा और पुकारने लगा,—"मेरी मा, जननी, कहां हो ?"

सन्तान के आह्वान से ललिता आज कुछ असमंजस में पड़ गई। अभी शेखर घर में है, वह रुपये निकालने कैसे जाय ? इधर-उधर देखकर वह मामी के पास गई। मामी अभी तुरंत ही दासी को डांट-फटकार कर नाराज चेहरे से रसोई बनाने बैठी थीं, उनसे भी वह कुछ नहीं कह सकी, और वापस आकर झांक कर देखा कि भिखारी दरवाजे के एक ओर लाठी रखकर अच्छी तरह जमकर बैठ गया है। इसके पहले ललिता ने उसे कभी निराश नहीं किया, आज उसे खाली हाथ लौटा देने में उसका मन बुरा हो रहा था।

भिखारी ने फिर पुकारा।

अन्नाकाली दौड़ आई और उसने कहा—"जीजी, तुम्हारा वह बूढ़ा लड़का आया है।"

ललिता ने कहा कि—"काली, एक काम कर सकती है बहन? मैं काम में फँसी हुई हूँ, तू जरा दौड़कर जा और शेखर भइया से एक रुपया ले आ।"

काली दौड़ गई और थोड़ी देर बाद उसी तरह दौड़ी आई और बोली—"यह लो।"

ललिता ने पूछा—शेखर भइया ने क्या कहा री?"

"कुछ नहीं। मुझसे कहा, अचकन की जेब से रुपया निकाल लो—मैं निकाल लाई।"

"और कुछ नहीं कहा?"

"नहीं और कुछ नहीं कहा।" कह कर अन्नाकाली गर्दन हिला कर खेलने चली गई।

ललिता ने उस बूढ़े भिखारी को रुपया देकर विदा किया। परन्तु और दिन की तरह वह खड़ी रह कर उसकी वाक्य-लड़ी नहीं सुन सकी, उसे कुछ अच्छा ही नहीं लगा।

इधर कई दिनों से उन लोगों के यहाँ ताश की बैठक खूब जोरों पर हो रही थी। आज दोपहर को ललिता वहाँ नहीं गयी, सिरदर्द का बहाना कर पड़ रही। आज सचमुच ही उसका मन बहुत खराब था। संध्या को उसने काली को बुला कर पूछा—"काली, तू पाठ लेने शेखर भइया के पास जाती है?"

काली ने सिर हिला कर कहा—"हां जाती तो हूँ।"

मेरी बात शेखर भइया कुछ नहीं पूछते?"

"नहीं। हाँ हाँ परसों पूछ रहे थे कि तुम दोपहर को ताश खेलने जाती हो या नहीं।"

ललिता ने उतावले पन से पूछा—"तैने क्या कहा ?"

काली बोली—मैंने कह दिया कि तुम दोपहर को चारु जीजी के यहाँ ताश खेलने जाती हो। शेखर भइया बोले—कौन कौन खेलता है ? मैंने कहा, तुम और सहेली मा, चारु जीजी और उनके मामा।—अच्छा, तुम अच्छा खेलती हो या चारु जीजी के मामा अच्छा खेलते हैं जीजी ? सहेली कहती हैं, तुम अच्छा खेलती हो. ठीक है न ?

ललिता ने उसकी बात का कुछ उत्तर न देकर एकाएक बहुत बिगड़ कर उससे कहा—"तैने इतनी अधिक बातें क्यों कह दीं ? सब बातों में तुझे दखल देना चाहिये, क्यों ? अब तुझे मैं कभी कोई चीज न दूँगी।" इतना कह कर वह गुस्सा हो कर चल दी।

काली दंग रह गई। ललिता के आकस्मिक परिवर्तन का कुछ भी अर्थ वह न जान सकी।

मनोरमा के यहां दो दिनों से ताश का खेल बन्द है। ललिता वहां नहीं जाती। ललिता को देखने के बाद से गिरीन्द्र उस पर आकृष्ट हो गया है, दूसरा मनोरमा को पहले से ही सन्देह हो गया था। उसका वह सन्देह आज दृढ़ हो गया।

इधर दो रोज से गिरीन्द्र जरा कुछ उत्सुक और अन्यमनस्क-सा हो गया था। वह सन्ध्या को घूमने नहीं जाता; जब तब घर में इधर-उधर घूमा-फिरा करता है। आज दोपहर को उसने मनोरमा से आकर कहा—"जीजी, आज भी खेल नहीं होगा ?

मनोरमा ने कहा—"कैसे होगा गिरीन, खेलने वाले कहाँ कहो तो हम लोग तीन ही जने खेलें।"

गिरीन्द्र ने निरुत्साह हो कर कहा—"तीन जनों में क्या खेल होगा जीजी ? ललिता को क्यों नहीं बुलवा लेतीं ?"

वह नहीं आयेगी।"

गिरीन्द्र ने उदास होकर पूछा—"क्यों नहीं आयेगी ? उसके घर वालों ने मना कर दिया है क्या जीजी ?"

मनोरमा ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं तो, उसके घर वाले तो ऐसे नहीं हैं—वो खुद ही नहीं आती।"

गिरीन्द्र ने सहसा खुश होकर कहा—"तो तुम्हारे खुद जाने से वह आ जायँगी।" इतना कहने के बाद स्वयं ही मन ही मन लज्जित-सा हो गया।

मनोरमा हँसती हुई बोली—"अच्छी बात है, मैं ही जाती हूँ।" कह कर वह चली गई, और थोड़ी देर बाद ललिता को लाकर ताश खेलने वैठ गई।

दो दिनों से उस स्थान पर खेल नहीं हुआ था। इसलिये खेल शुरू होते ही बड़ी जल्दी जम गया। ललिता की पार्टी जीत रही थी।

दो घण्टे बाद सहसा अन्नाकाली आ खड़ी हुई और बोली—"जीजी, शेखर भइया बुला रहे हैं जल्दी चलो।"

ललिता ताश रखकर मनोरमा के चेहरे की ओर देखकर संकोच के साथ बोली—"जाती हूँ, सहेली मा।"

मनोरमा ने व्यस्त भाव से कहा—"सो क्योंरी, और दो बाजी खेल जा।"

ललिता जल्दी से उठ कर खड़ी हो गई और बोली—"नहीं

सहेली-मा वे बहुत गुस्सा होंगे।" और जल्दी जल्दी कदम बढ़ाती हुई चली गई।

गिरीन्द्र ने पूछा—"शेखर भइया कौन हैं जीज़ी ?"

मनोरमा बोली—"वह जो सामने फाटक वाला मकान है, उसी में रहते हैं।"

गिरीन्द्र ने गर्दन हिलाते हुए कहा—"अच्छा उस मकान के नवीन बाबू इनके रिश्तेदार होंगे।"

मनोरमा ने लड़की के मुँह की तरफ देखकर मुस्कराते हुए कहा—"रिश्तेदार कैसे ? ललिता के उस रहनेवाले मकान तक को तो बुढ़ऊ हड़पने की चिन्ता में हैं।"

गिरीन्द्र के पूछने पर मनोरमा किस्सा बताने लगी–पिछले साल अर्थाभाव से गुरुचरण बाबू की मझली लड़की की शादी नहीं हो रही थी, अन्त में बहुत अधिक ब्याज पर नवीन बाबू ने मकान गिरवीं रख कर रुपये उधार दिये थे। यह कर्ज कभी चुक नहीं सकता, अन्त में वह नवीन बाबू का ही हो जायगा, इत्यादि।

मनोरमा ने कुल किस्सा सुना कर अन्त में अपनी राय जाहिर की—बुढ़ऊ की आन्तरिक इच्छा है कि गुरुचरण बाबू का मकान तुड़वा कर वहाँ अपने छोटे लड़के शेखर के लिये बड़ा-सा मकान बनवा दें। दोनों लड़कों के लिये अलग-अलग मकान हो जायँगे,—इरादा बुरा नहीं है।

उपरोक्त किस्सा सुनकर गिरीन्द्र को दुःख हो रहा था, उसने पूछा—"अच्छा जीजी, गुरुचरण बाबू के और भी तो लड़की हैं, उनका विवाह कैसे करेंगे ?"

मनोरमा बोली—"अपनी तो हैं नहीं, उनके सिवा ललिता भी है। उसके मा बाप नहीं हैं इस साल उसका विवाह अवश्य

ही होना चाहिये। उन लोगों के समाज में सहायता देनेवाला कोई नहीं, जात लेने को सभी हैं,--उन लोगों से हम लोग कहीं अच्छे हैं गिरीन।"

गिरीन्द्र चुप रहा। मनोरमा फिर कहने लगी—उस दिन ललिता की बात करते करते उसकी मामी मेरे आगे रोने लगी थी,—कैसे उसका विवाह होगा, कुछ ठीक नहीं,—उसकी चिन्ता करते करते गुरुचरण का अन्न-जल छूट रहा है। अच्छा गिरीन, मुँगेर में तेरे मित्रों में कोई ऐसा नहीं जो केवल लड़की देखकर विवाह कर सके ? ऐसी लड़की मिलना बहुत कठिन है।

गिरीन्द्र के चेहरे पर उदासी छा गई। वह अपने आपको सम्हाल कर हँसता हुआ बोला—"मित्र-वित्र कहाँ हैं जीजी, कहो तो रुपये पैसे से मैं स्वयं सहायता कर दूँ।"

गिरीन्द्र के पिता डाक्टर थे। उनकी डाक्टरी काफी चली हुई थी। उसी पेशे से काफी धन पैदा करके और जमीन-जायदाद छोड़ गये हैं, अब सबका मालिक एकमात्र गिरीन्द्र ही है।

मनोरमा ने कहा—'रुपया तू उधार देगा ?"

"हां, उधार दे दूंगा जीजी,--चाहे तो वे चुका दें, नहीं तो न सही।"

मनोरमा ताज्जुब में पड़ गई। बोली—"रुपये देने से तुझे लाभ ? वे न तो हमारे रिश्तेदार ही हैं, और न समाज के,-ऐसे ही कोई किसी को रुपये देता है ?"

गिरीन्द्र अपनी बहन के चेहरे की ओर देखकर हँसने लगा, उसके बाद बोला--"समाज के आदमी न हुए तो क्या ? हैं तो अपने देश के ? उनका हाथ बहुत तंग है, और मेरे पास रुपये रक्खे हैं।—तुम एक बार उनसे पूछ कर देख लो जीजी, वे अगर लेना स्वीकार करें, तो मैं दे सकता हूँ। ललिता उनकी भी कोई

नहीं है, हमारी भी कोई नहीं है—उसके विवाह का कुल खर्च मैं दे दूंगा।

उसकी बात सुनकर मनोरमा अधिक प्रसन्न नहीं हुई। इसमें यद्यपि उसका अपना हानि-लाभ कुछ भी नहीं था, फिर भी, इतना रुपया एक आदमी किसी दूसरे आदमी को देदे, इस बात को कोई भी स्त्री खुशी खुशी स्वीकार नहीं कर सकती।

चारु अब तक चुपचाप दोनों की बातें सुन रही थी, वह अति प्रसन्न होकर उछल पड़ी और बोली—"हाँ मामाजी दे दो" मैं सहेली-मा से कह आती हूँ जाकर।

चारु की मा ने उसे डाँट दिया, जिससे उसकी सारी खुशी मन ही मन में मर गई। मनोरमा बोली—"तू चुप रह चारु, लड़कियों को इन सब बातों में न पड़ना चाहिये। कहना होगा सो मैं जाकर कह दूँगी ?"

गिरीन्द्र ने कहा—"हाँ, तुम्हीं कहना जीजी। परसों रास्ते में खड़े खड़े गुरुचरण बाबू से मेरी जरा बात चीत हुई थी बात चीत से मालूम हुआ कि वह बड़े सरल आदमी हैं, तुम क्या समझती हो जीजी ?"

मनोरमा बोली—"मैं भी यही समझती हूँ और सभी यही कहते हैं। वे स्त्री-पुरुष दोनों ही बड़े सीधे सादे आदमी हैं। इसी से तो उनका आर्थिक-कष्ट देख कर दुःख होता है गिरीन, ऐसे अच्छे जीवों को घर द्वार छोड़ कर निराश्रय हो, मारे मारे फिरना होगा। इसका सबूत नहीं देखा तैंने! शेखर बाबू बुला रहे हैं, सुनते ही ललिता कैसे जल्दी जल्दी उठकर चल दी। घर भर उन लोगों के हाथ बिक-सा गया है, लेकिन कितनी भी खुशामद क्यों न करे कोई, नवीन राय के फन्दे में जो एक बार पड़ चुका है, उसका बचना बहुत कठिन है।

गिरीन्द्र ने पूछा—"तुम तो कहोगी न जीजी ?"

"अच्छा, कहूँगी। रुपये देकर तू यदि उपकार कर सका तो अच्छा ही है।" कह कर जरा वह हँस दी, फिर बोली—"अच्छा, तुझे ऐसी क्या गरज पड़ी है गिरीन ?"

"गरज किस बात की जीजी, दुःख कष्ट में परस्पर एक दूसरे की सहायता करनी ही चाहिये।" कहता हुआ वह लजा कर बाहर चला गया। परन्तु दरवाजे के बाहर जाकर फिर लौट आया और बैठ गया।

उसकी जीजी ने कहा—"फिर बैठ गया जो ?"

गिरीन्द्र ने हँसते हुए कहा—"इतना जो रोना रोया जीजी, सो सब झूठ भी तो हो सकता है ?"

मनोरमा ने विस्मित होकर कहा—क्यों ?

गिरीन्द्र कहने लगा,—"उनकी ललिता जिस प्रकार रुपये खर्च करती है, उससे तो मालूम होता है कि वह जरा भी दुखी नहीं है। उस रोज हम लोग थियेटर देखने गये थे। वह खुद तो हमारे साथ नहीं गई, लेकिन फिर भी दस रुपये उसने अपनी बहन के हाथ भिजवा दिये। चारु से पूछो न, कैसा खर्च करती है, महीने में बीस-पचीस से कम में उसका अपना ही खर्च नहीं चलता।"

मनोरमा को विश्वास नहीं हुआ।

चारु ने कहा—सच्ची मा। सब शेखरबाबू से लेकर खर्च करती है। अब से नहीं छोटेपन से ही वह बराबर शेखर भइया की आलमारी खोलकर रुपये निकाल लाया करती है, उसे कोई कुछ नहीं कहता।

मनोरमा ने चारु की ओर देखकर संदिग्ध-भाव से पूछा—"रुपये निकाल लाती है, शेखर बाबू जानते हैं ?"

चारु ने सिर हिलाकर कहा—"जानते हैं। उनके सामने ही तो निकालती है। पिछले महीने में जो अन्नाकाली की गुड़िया का ब्याह हुआ था, उसमें रुपय किसने दिये थे? सब तो सहेली ने दिये थे।"

मनोरमा ने कुछ सोच कर कहा—"क्या जानें! पर एक बात है, बुढ़ऊ के लड़के बाप जैसे कंजूस नहीं, उन सब पर अपनी माता का असर पड़ा है—इसी से उनमें दया-धर्म है। इसके सिवा ललिता लड़की भी बहुत अच्छी है, बचपन से ही बराबर साथ साथ रही है, भइया भइया कहती आई है, इससे उस पर सबकी ममता हो गई है। अच्छा चारु, तू तो जाया-आया करती है, तुझे तो मालूम होगा, अगले महीने में शेखर का ब्याह होने वाला है न? सुना है, लड़की वाले से बुढ़ऊ को काफी रुपया मिलेगा।"

चारु बोली—"हाँ मा, अगले माघ में ही होगा—सब पक्का हो गया है।"

गिरीन्द्र ने पूछा—"तुम तो कहोगी न जीजी ?"

"अच्छा, कहूँगी। रुपये देकर तू यदि उपकार कर सका तो अच्छा ही है।" कह कर जरा वह हँस दी, फिर बोली—"अच्छा, तुझे ऐसी क्या गरज पड़ी है गिरीन ?"

"गरज किस बात की जीजी, दुःख कष्ट में परस्पर एक दूसरे की सहायता करनी ही चाहिये।" कहता हुआ वह लजा कर बाहर चला गया। परन्तु दरवाजे के बाहर जाकर फिर लौट आया और बैठ गया।

उसकी जीजी ने कहा—"फिर बैठ गया जो ?"

गिरीन्द्र ने हँसते हुए कहा—"इतना जो रोना रोया जीजी, सो सब झूठ भी तो हो सकता है ?"

मनोरमा ने विस्मित होकर कहा—क्यों ?

गिरीन्द्र कहने लगा,—"उनकी ललिता जिस प्रकार रुपये खर्च करती है, उससे तो मालूम होता है कि वह जरा भी दुखी नहीं है। उस रोज हम लोग थियेटर देखने गये थे। वह खुद तो हमारे साथ नहीं गई, लेकिन फिर भी दस रुपये उसने अपनी बहन के हाथ भिजवा दिये। चारु से पूछो न, कैसा खर्च करती है, महीने में बीस-पचीस से कम में उसका अपना ही खर्च नहीं चलता।"

मनोरमा को विश्वास नहीं हुआ।

चारु ने कहा—सच्ची मा। सब शेखरबाबू से लेकर खर्च करती है। अब से नहीं छोटेपन से ही वह बराबर शेखर भइया की आलमारी खोलकर रुपये निकाल लाया करती है, उसे कोई कुछ नहीं कहता।

मनोरमा ने चारु की ओर देखकर संदिग्ध-भाव से पूछा—"रुपये निकाल लाती है, शेखर बाबू जानते हैं ?"

चारु ने सिर हिलाकर कहा—"जानते हैं। उनके सामने ही तो निकालती है। पिछले महीने में जो अन्नाकाली की गुड़िया का ब्याह हुआ था, उसमें रुपय किसने दिये थे ? सब तो सहेली ने दिये थे।"

मनोरमा ने कुछ सोच कर कहा—"क्या जानें! पर एक बात है, बुढ़ऊ के लड़के बाप जैसे कंजूस नहीं, उन सब पर अपनी माता का असर पड़ा है—इसी से उनमें दया-धर्म है। इसके सिवा ललिता लड़की भी बहुत अच्छी है, बचपन से ही बराबर साथ साथ रही है, भइया भइया कहती आई है, इससे उस पर सबकी ममता हो गई है। अच्छा चारु, तू तो जाया-आया करती है, तुझे तो मालूम होगा, अगले महीने में शेखर का ब्याह होने वाला है न ? सुना है, लड़की वाले से बुढ़ऊ को काफी रुपया मिलेगा।"

चारु बोली—"हाँ मा, अगले माघ में ही होगा—सब पक्का हो गया है।"

५

गुरुचरण उन व्यक्तियों में से हैं जिनके साथ किसी भी अवस्था का कोइ भी आदमी बिना किसी संकोच के बातचीत कर सकता है। दोही रोज की बातचीत से गिरीन्द्र के साथ उनकी स्थायी मित्रता सी हो गई है। गुरुचरण के मन में जरा भी दृढ़ता नहीं थी। इसीलिये बहस करने में काफी दिलचस्पी होते हुए भी बहस में हार जाने में उन्हें जरा भी असन्तोष नहीं होता था।

गिरीन्द्र को उन्होंने सन्ध्या के बाद चाय पीने का निमन्त्रण दे रक्खा था। आफिस से लौटते-लौटते दिन छिप जाया करता था। घर आकर मुँह हाथ धोकर तुरत कहते—"ललिता चाय तैयार हुई बिटिया? काली, जा जा, अपने गिरीन मामा को बुला ला जल्दी से।" इसके बाद दोनों चाय पीते और बहस करते रहते।

ललिता किसी-किसी दिन मामा की आड़ में बैठी सुना करती। उसे गिरीन की युक्तियाँ सौ गुनी अच्छी जचतीं। अक-

सर आधुनिक समाज के विरुद्ध तर्क हुआ करता था। समाज की हृदय-हीनता, असंगत उपद्रव और अत्याचार आदि सभी बातें हुआ करतीं।

पहले तो समर्थन करने लायक वास्तव में कुछ होता नहीं उस पर गुरुचरण के उत्पीड़ित अशान्त हृदय के साथ गिरीन्द्र की बातें मिल जातीं। वे अन्त में गर्दन हिलाकर कहते—"ठीक बात है गिरीन, किसकी इच्छा नहीं होती कि अपनी कन्याओं को यथा समय अच्छी जगह व्याह दें, लेकिन, दें कैसे? समाज कहता है कि लड़की की उम्र हो चुकी है, व्याह कर दो, लेकिन व्याहने का इन्तजाम नहीं कर दे सकता। ठीक कहते हो गिरीन मुझको ही देखो न, मकान तक गिरवी रख देना पड़ा, दो दिन बाद बाल-बच्चों को लेकर राह का भिखारी बनना पड़ेगा,—समाज तब यह थोड़े ही कहेगा कि आओ हमारे घर आश्रय लो! बताओ भला?"

गिरीन चुप रहता, गुरुचरण स्वयं ही कहते रहते—"बिल्कुल ठीक बात है। ऐसे समाज से तो दूर रहना ही अच्छा। पेट भरे या भूखे रहें, शान्ति से तो रह सकते हैं, जो समाज दुखी का दुःख नहीं समझता, आफत-विपत में हिम्मत नहीं बन्धाता, वह समाज मेरा नहीं—मुझ जैसे गरीबों का नहीं है—वह समाज तो बड़े आदमियों का है। अच्छा है, वे ही रहें समाज में, हम लोगों को आवश्यकता नहीं उस की।" कहकर गुरुचरण सहसा चुप हो जाते।

इन युक्ति भरे तर्कों को ललिता केवल मन लगाकर सुनती ही न थी, बल्कि रात को बिस्तर पर पड़ी पड़ी जब तक नींद न आती तब तक अपने मन में उन पर विचार करती रहती। हर एक बात उसके मन पर गम्भीरता के साथ मुद्रित होती रहती।

वह मन ही मन कहती—वास्तव में गिरीन बाबू की बातें अत्यन्त न्याय संगत हैं।

अपने मामा से ललिता का बहुत अधिक स्नेह था। उस मामा को अपने पक्ष में लेकर गिरीन जो भी कुछ कहता सब उसे अभ्रान्त सत्य मालूम होता। उसके मामा खासकर उसी के लिये इतने उद्विग्न हो उठे हैं, अन्न-जल तक उन्हें नहीं रुच रहा है,—उसके निर्विरोधी दुखी मामा, उसे आश्रय देकर ही तो इतना क्लेश भोग रहे हैं,—लेकिन क्यों? मामा की जात क्यों जायगी? आज मेरा व्याह हो जानेके बाद कल ही यदि मैं विधवा होकर घर लौट आऊँ, तब तो जात न जायगी! फिर इसमें भेद क्या है! गिरीन्द्र की इन सब बातों की प्रतिध्वनि जा उसके भावातुर हृदय में जाकर गूँजती रहती, उसे वह बाहर निकाल कर उस पर अच्छी तरह विचार करती और विचार करते-करते सो जाती।

उसके मामा के पक्ष में उन के दुःख को समझ कर जो कोई बात करता, उसके मत से अपना मत बिना मिलाये ललिता के लिये कोई रास्ता ही नहीं था। वह गिरीन्द्र पर आन्तरिक श्रद्धा करने लगी।

क्रमश गुरुचरण की तरह वह भी सन्ध्या के चाय-पान के समय की प्रतीक्षा करने लगी।

गिरीन्द्र ललिता को पहले 'आप' कहा करता था। गुरुचरण ने एक रोज कहा—"उसे 'आप' क्यों कहते हो गिरीन, 'तुम' कहा करो।" तब से उसने ललिता को 'तुम' कहना शुरू कर दिया।

एक दिन गिरीन ने उससे पूछा—"तुम चाय नहीं पीती ललिता?" इस पर ललिता ने मुँह नीचा कर लिया और सिर हिला दिया, तब गुरुचरण बोले—"उसके शेखर भइया की मना

कहने में कोई संकोच नहीं करता गिरीन, क्या बात कहना चाहते हो, कहो ।"

गिरीन्द्र बोला—"जीजी से सुना है कि नवीन बाबू ब्याज बहुत अधिक लेते हैं, और मेरे बहुत से रुपये योंही पड़े हैं,—किसी काम नहीं आते। और आपके कहेनुसार नवीन बाबू को रुपयों की इस समय दरकार भी है, इससे मेरा कहना है कि न हो तो उनके रुपये आप चुका ही दें।"

ललिता और गुरुचरण दोनों ही आश्चर्य-चकित होकर गिरीन्द्र के मुँह की ओर देखने लगे। गिरीन्द्र अत्यन्त संकोच के साथ कहने लगा—मुझे अभी तो रुपयों की कोई खास ज़रूरत नहीं इसलिये कहता हूँ कि आप को जब सुविधा हो दे दीजियेगा,— उन लोगों का आवश्यकता है, दे दें तो अच्छा होगा, अगर—"

गुरुचरण ने धीरे से पूछा—"सब रुपये तुम दे दोगे ?"

गिरीन्द्र ने मुँह नीचा करके कहा—"हाँ हाँ, इस समय उनका काम निकल जायगा।"

गुरुचरण उसके उत्तर में कुछ कहना ही चाहते थे इतने में अन्नाकाली दौड़ती हुई आई और बोली—जीजी, जीजी, जल्दी, जल्दी,—कहकर वह जैसे आई थी वैसे ही भाग गई। उसकी व्यग्रता देख गुरुचरण हँस पड़े। ललिता शान्त होकर बैठ रही।

अन्नाकाली दूसरे ही क्षण वापिस आकर बोली—"कहाँ, उठी तो नहीं जीजी, हम सब तुम्हारे लिये खड़े हैं।"

इतने पर ललिता के उठने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया, वह आखीर तक सुन जाना चाहती थी, किन्तु गुरुचरण ने काली के मुँह की ओर देख कर मुस्कराते हुये ललिता के माथे

उनको भी इसमें क्या दोष दूँ ? छः महीने हो गये, एक पैसा भी ब्याज का नहीं दे सका, असल तो दूर रहा।

बातको सुनकर ललिता उसे दवा देने के लिए उतावली हो उठी। उसके अदूरदर्शीय मामा कहीं घर की सभी बातें दूसरे के सामने न कह बैठें, इस भय से ललिता झटपट कह उठी—"तुम कुछ फिक्र मत करो मामाजी, बादमें सब ठीक हो जायगा।"

गुरुचरण ने ललिता की बुद्धिमानी से भरी बात समझी ही नहीं, वह उदासी के साथ हँसकर बोले—"बाद में क्या ठीक हो जायगा बिटिया ? असल बात यह है गिरीन, मेरी बिटिया चाहती है कि उसका यह बूढ़ा मामा कुछ सोच फिकर न करे, निश्चिन्त रहे। मगर, बाहर के लोग तो तेरे दुखी मामा के दुःख की ओर देखना ही नहीं चाहते ललिता !"

गिरीन्द्र ने पूछा—"नवीन बाबू ने आज क्या कहा था ?"

ललिता नहीं जानती थी कि गिरीन्द्र को सब बातें मालूम हैं। वह इसी से उसके प्रश्न को असंगत कुतूहल समझ कर मन ही मन अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी।

गुरुचरण ने सब बातें खुलासा करके कह दीं। वह बोले—"नवीन राय की स्त्री बहुत दिनों से अजीर्ण रोग से कष्ट पा रही हैं, फिलहाल रोग कुछ बढ़ जाने से डाक्टरों ने हवा-पानी बदलने के लिए राय दी है। इसलिये उन्हें रुपयों की आवश्यकता है, लिहाजा इस समय गुरुचरण को आज तक का पूरा ब्याज और कुछ असल रुपये भी देने पड़ेंगे।"

गिरीन्द्र कुछ देर चुप रह कर धीरे से बोला—"एक बात मैं आप से कई दिनों से कहने को था, परन्तु कह नहीं पाया, यदि कुछ ख्याल न करें तो आज कह दूँ।"

गुरुचरण हँस पड़े और बोले—'मुझ से तो कभी कोई बात

आकर दोनों हाथों से सहसा ललिता का मुँह ऊपर उठा, बोला—
"सचमुच ही तुम रो रही हो ! क्या हुआ है तुम को ?"
ललिता से अब अपने को संभाला न गया। वह वहीं की वहीं बैठकर आँचल से मुँह ढक कर रो पड़ी।

पर हाथ रख कर कहा—"तू जा बिटिया देर मत कर,—तेरे लिये सब बाट देख रहे हैं।

आखिर ललिता को उठना ही पड़ा। परन्तु जाने के पहले उसने गिरीन्द्र के चेहरे की ओर कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखा और धीरे से बाहर चली गई। यह बात गिरीन्द्र से छिपी न रही।

दस मिनट बाद कपड़े वगैरह पहन, तैयार होकर वह पान देने के बहाने और एक बार बैठक में आई।

गिरीन्द्र चला गया। अकेले गुरुचरण मोटे तकिये पर सिर रखे आराम के साथ लेटे हुये थे और उनकी मुंदी हुई दोनों आखों के किनारे से आँसुओं की धार वह रही थी। यह आनन्द आश्रु हैं, इस बात को ललिता समझ गई। समझ जाने के कारण ही उसने उनके ध्यान में बाधा नहीं पहुँचाई,—जैसे चुपके से आई थी वैसे ही चुपचाप वापिस चली गई।

थोड़ी देर बाद वह शेखर के घर पहुँची, तब उसकी आँखों में आँसू भर आये थे। काली वहाँ नहीं थी। वह सबके पहले गाड़ी में जा बैठी थी। शेखर अकेला अपने कमरे में चुपचाप खड़ा-खड़ा शायद उसी का रास्ता देख रहा था। ललिता के पहुँचने पर उसने मुँह उठाकर उसकी आँसू भरी आँखों की ओर देखा।

वह आठ दस रोज ललिता को देख न पाने के कारण मनही मन बहुत नाराज हो रहा था परन्तु अब उस बात को वह भूल गया और उद्विग्न होकर बोला—"यह क्या, रो क्यों रही हो?"

ललिता ने सिर झुकाकर जोर से गरदन हिला दी।

इधर कई दिनों से ललिता को बिलकुल न देखने से शेखर के मन में एक तरह का परिवर्तन हो रहा था, इसी से वह पास

इस प्रकार रुपये नहीं चुका देते। मान लिया कि एक बार रुपए माँगे थे, सो भी तुम्हारी भाभी के लिए—अपने लिए नहीं, —खैर, यह तो बताओ, कितने ब्याज पर गिरवी रखा है मकान ?"

गुरुचरण ने गरदन हिलाकर कहा—"गिरवी नहीं रखा,—ब्याज के बारे में कुछ भी बात नहीं हुई।"

नवीन बाबू को विश्वास नहीं हुआ, उन्होंने कहा—"कहते क्या हो, योंही ?"

हाँ भइया, एक प्रकार से योंही समझो। लड़का बहुत अच्छा है, बड़ा दयावान है।

"लड़का ?—लड़का कौन ?"

गुरुचरणने इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया, चुप रहे। —जितना पहले कह गये थे उतना उचित न था।

नवीन उनके मन की बात को ताड़कर मन ही मन मुस्कराते हुए बोले—"जब कि कहने की मनाही है तो कहने की कोई दरकार नहीं। लेकिन संसार में बहुत कुछ देखा है मैंने, इसलिए सावधान किये देता हूँ तुम्हें, वे चाहे कोई भी हों, इतनी भलाई करते करते कहीं जाल में न फँसा लें !

गुरुचरण ने इस बात का कोई उत्तर न दिया, कागज हाथ में लेकर सीधे घर को लौट आये।

भुवनेश्वरी प्रायः हर साल इन दिनों कुछ काल के लिये पश्चिम की ओर घूमने चली जाया करती हैं। उन्हें अजीर्ण की शिकायत बनी रहती है, और इस घूमने और हवा-पानी बदलने से उन्हें लाभ होता है। रोग इतना अधिक नहीं था जितना नवीन ने स्वार्थ साधने के लिए गुरुचरण से बढ़ाकर कहा था। खैर, कुछ भी हो, सफर की तयारियाँ होने लगीं।

६

अपने पूरे रुपये मय व्याज के पाई पाई गिन लेने के बाद रेहन का पुर्जा वापिस करते हुए नवीन राय ने कहा—"आखिर रुपये दिये किसने, बताओ भी तो?"

गुरुचरण ने नम्रता पूर्वक कहा—"सो मत पूछिये भइया, किसी से कहने को उसने मना कर दिया है।"

नवीन बाबू रुपये पाकर जरा भी सन्तुष्ट नहीं हुए। न तो उन्हें इसकी आशा ही थी और न इच्छा, बल्कि यह मकान तुड़वाकर किस ढंग का नया बनवायेंगे यही वह सोच रहे थे। उन्होंने व्यंग भाव से कहा—"सो अब तो होगी ही भाई साहब, दोष तुम्हारा नहीं, दोष है मेरा। रुपया लौटाने के लिए कहना ही अपराध गिना जाता है। आखिर कलिकाल तो ठहरा।"

गुरुचरण ने अत्यन्त दुखित होकर कहा—"ऐसा क्यों कहते हो भइया! आपका कर्ज चुकाया है, लेकिन आपकी कृपा का ऋण थोड़े ही चुक सकता है।"

नवीन हँस पड़े। वे अनुभवी आदमी हैं। इन सब बातों पर विश्वास करते होते तो गुड़ बेचकर इतने रुपये न कमा सकते। बोले—सचमुच यदि ऐसा सोचते भाई साहब, तो

कि अब हम लोगों को किसी बात का डर नहीं। ठीक है न शेखर भइया?"

उत्तर में शेखर ने कुछ नहीं कहा, उसी तरह एक टक देखता रहा।

काली ने पूछा—"क्या सोच रहे हो शेखर भइया?"

अब शेखर का ध्यान भंग हुआ, जल्दी से बोल उठा,—"कुछ नहीं। काली, अपनी जीजी को जरा जल्दी से भेज तो दो, कहना, मैं बुला रहा हूँ, जा, दौड़ी जा।

काली दौड़ती हुई चली गई।

शेखर खुले हुए सूट—केस की तरफ एक टक देखता हुआ चुपचाप बैठ रहा। किस चीज की जरूरत है, किसकी नहीं, उसकी आँखों के सामने सब एकाकार हो गया।

बुलाहट सुनकर ललिता ने ऊपर आकर खिड़की में से झांक कर देखा कि उसके शेखर भइया जमीन पर एक टक नीचे को निगाह किये चुपचाप बैठे हैं। उनके चेहरे का ऐसा भाव पहले कभी नहीं देखा था। ललिता ताज्जुब में पड़ गई और डर गई। धीरे धीरे पास पहुँचने पर शेखर 'आओ' कह कर व्यस्तता के साथ खड़ा हो गया।

ललिता ने धीरे से पूछा—"मुझे बुलाया है?"

"हाँ," कह कर शेखर कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—"कल सवेरेकी गाड़ीसे मैं मा के साथ घूमने पश्चिम जा रहा हूँ, अबकी बार लौटने में शायद देर होगी। यह लो चाबी, तुम्हारे खर्च के रुपये पैसे उस दराज में रखे हैं, आवश्यकता हो तो ले लेना।

पहले हर यात्रा में ललिता भी साथ जाया करती थी, पिछली यात्रा में उसने बड़े यत्न के साथ चीज-बस्त सम्हाल कर रक्खी थी! इस यात्रा में वह सारा काम शेखर भइया को करना पड़

उस दिन सन्ध्या के समय एक चमड़े के सूट-केस में शेखर अपनी आवश्यक शौक की चीजें सजाकर रख रहा था।

अन्नाकाली ने कमरे में आकर कहा—'शेखर भइया, तुम लोग कल जाओगे न ?"

शेखर सूट-केसपर से मुँह उठाकर बोला—"काली, तू अपनी जीजी को भेज दे, क्या क्या साथ ले जायगी, अभी से पहुँचा दे। ललिता हर साल मा के साथ जाती है, इस साल भी जायगी, यही शेखर को मालूम था।"

कालीने गरदन हिलाकर कहा—'जीजी तो जायगी नहीं।"

"क्यों नहीं जायगी ?"

काली ने कहा—"वाह, कैसे जायँगी ! माघ फागुन में उनका व्याह हो जायगा, वावूजी दुलहा ढूँढ़ रहे हैं।"

शेखर एक टक से सन्न होकर उसकी ओर देखता रह गया।

काली ने घरमें जो कुछ सुना था, उत्साह के साथ सब कहने लगी,—गिरीन वावू ने कहा है, जितने भी रुपये लगेगें मैं दूँगा, अच्छा घर चाहिए। वावू जी आज भी आफिस नहीं जायँगे, खा पीकर कहीं वर देखने जायँगे। गिरीन वावू भी साथ रहेंगे।

शेखर चुपचाप बैठा सुनता रहा, और ललिता क्यों नहीं आती, इसका भी कारण कुछ कुछ उसे मालूम हो गया।

काली कहने लगी—"गिरीन वावू बड़े अच्छे आदमी हैं, शेखर भइया, मझली जीजी के व्याह के समय वावूजी ने मकान गिरवी रखा था न, ताऊजी के पास; सो वावू जी कह रहे थे कि दो-तीन महीने बाद हम सवको राह का भिखारी हो जाना पड़ेगा,—इसीसे गिरीन वावू ने रुपये दे दिये हैं। कल वावू जी ने सब रुपये ताऊ जी को वापिस दे दिये हैं, जीजी कह रही थीं,

अन्दाज दो घंटे बाद नहा-धोकर और खा-पीकर आफिस की पोशाक पहनने जब वह ऊपर अपने कमरे में घुसा तो सचमुच ही अवाक रह गया।

इन दो घण्टे में ललिता ने कुछ भी नहीं किया था, वह सूट-केस के ढकने पर सिर रखकर चुपचाप बैठी थी। शेखर के पैरों की आहट से वह चौंक पड़ी और उसने मुँह उठाकर तुरन्त ही सिर झुका लिया। उसकी दोनों आँखें जवाकुसुम के समान लाल सुर्ख हो रही थीं।

लेकिन, शेखर ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया, उसने आफिस की पोशाक पहनते हुये स्वाभाविक भाव से कहा—"अभी तुम से होगा नहीं ललिता, दोपहर को आकर सम्हाल देना।" इतना कहकर शेखर तैयार होकर आफिस चला गया। वह ललिता की सुर्ख आँखों का कारण अच्छी तरह समझ गया था, लेकिन सब बातों पर अच्छी तरह विचार किये बिना ऊसे कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

उस दिन जब ललिता मामा को चाय देने गई तो जरा सिकुड़-सी गई।, आज शेखर बैठा था। वह गुरुचरण से विदा लेने आया था।

ललिता ने सिर झुकाये हुए दो प्याला चाय गिरीन और अपने मामा क आगे रख दी, इसपर गिरीन ने कहा—"शेखर बाबू को चाय नहीं दी ललिता ?"

ललिता ने सिर नीचे किए ही धीरे से कहा—"शेखर भइया चाय नहीं पीते।" गिरीन और कुछ नहीं बोले। ललिता के चाय न पीने की बात उन्हें याद आ गई। शेखर खुद चाय नहीं पीता. और दूसरा कोई पीये यह भी नहीं चाहता।

हाथ में चाय का प्याला लेकर गुरुचरण ने लड़के की बात

रहा है—खुले सूट-केस को देखते ही ललिता को उस बात की याद आ गई।

ललिता की तरफ से मुँह फेर कर शेखर ने एक बार खांसकर गला साफ किया और बोला—'सावधानी से रहना, और यदि कभी कोई खास दरकार पड़े, तो भइया से पता पूछ कर मुझे पत्र लिख देना।"

इसके बाद दोनों चुप रहे अब की बार ललिता साथ नहीं जायगी, शेखर को यह बात मालूम हो गई और उसका कारण भी शायद मालूम हो गया होगा, इस बात का ख्याल करके ललिता मारे लज्जा के गड़ गड़ जाने लगी।

सहसा शेखर ने कहा—"अच्छा, अब जाओ, मुझे अभी सब सामान सम्हाल कर रखना है। देखता हूँ बहुत देर हो गई है, आज एक बार आफिस भी जाना है।

ललिता खुले हुए सूट-केस के सामने घुटने टेककर बैठ गई और बोली—तुम जाकर नहाओ, मैं सब ठीक करे देती हूँ।"

"तब तो अच्छा ही हो।" कह कर शेखर चाबियों का गुच्छा ललिता के आगे फेंक, कमरे के बाहर जाकर जरा ठिठक कर खड़ा हो गया और बोला—मुझे किन किन चीजों की दरकार पड़ती है, भूल तो नहीं गई हो ?"

ललिता सिर झुकाकर सूट-केस की चीजें देखने लगी, उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

शेखर ने नीचे जाकर मा से पूछकर मालूम किया कि काली की सारी बातें सत्य हैं। गुरुचरण ने कर्जा चुका दिया है, यह बात भी ठीक है, और ललिता के लिए लड़का ढूँढ़ने की विशेष चेष्टा हो रही है, यह भी सच है। वह और कुछ न पूछ कर नहाने चला गया।

कहते छोटी-सी एक उसास छोड़कर बोले—"बिटिया हमारी लक्ष्मी-सरस्वती दोनो है। ऐसी लड़की बड़े भाग से मिलती है शेखर—।" बात कहते कहते उनके दुबले-पतले चेहरेपर गम्भीर स्नेह की ऐसी एक स्निग्ध मधुर छाया आ गई कि गिरीन और शेखर दोनों ही आन्तरिक श्रद्धा के साथ उन्हें मन ही मन नमस्कार किए बिना रह न सके।

छेड़ दी, लड़का बी० ए० में पढ़ता रहा है, इत्यादि। बहुत तारीफ करने के बाद उन्होंने कहा—"फिर भी हमारे गिरीन को पसन्द नहीं आता। हाँ, इतना अवश्य है कि लड़का देखने में अधिक सुन्दर नहीं है; लेकिन, पुरुषों का रूप किस काम आता है, गुण होना चाहिये,—इतना ही बहुत है।"

कहने का सारांश यही कि किसी प्रकार विवाह हो जाय तो उनकी जान में जान आये।

शेखर के साथ गिरीन्द्र का अभी-अभी नाम मात्र का परिचय हुआ था। शेखर ने उसकी ओर देख और हँसकर कहा—"गिरीन बाबू को पसन्द क्यों नहीं आया? लड़का पढ़ रहा है अवस्था भी अच्छी है,—यही तो लक्षण है सुपात्र का।"

शेखर ने पूछा तो जरूर, लेकिन ठीक समझ गया था कि गिरीन को क्यों पसन्द नहीं, और क्यों भविष्य में और कोई भी पसन्द न आयेगा। परन्त, गिरीन्द्र एकाएक कोई उत्तर न दे सका उसके मुँह पर सुर्खी दौड़ गई और शेखर इस बात को ताड़ गया। वह उठकर खड़ा हो गया, बाला—"चाची जी, मैं तो कल मा के साथ पश्चिम घूमने जा रहा हूँ, ठीक समय पर खबर देना न भूल जाइयेगा।"

गुरुचरण ने उत्तर दिया—"ऐसा क्यों कहते हो बेटा, तुम्हीं लोग तो हमारे सब कुछ हो। इसके सिवा, ललिता की मा के बिना मौजूद रहे कोई काम भी तो नहीं हो सकता। क्यों बिटिया, है कि नहीं?" कहकर हँसते हुए मुड़े तो देखा ललिता है ही नहीं, बोले—"उठकर चली कब गई?"

शेखर बोले—"बात छिड़ते ही भाग गई।"

गुरुचरण गम्भीरता पूर्वक बोले—"भाग तो जायगी ही, आखिर कुछ भी हो वह समझदार तो हो ही गई है!" कहते-

दिया। ललिता के हाथ के स्पर्श से उसके मुँह पर कुछ-कुछ रौनक लौट आई। उसने पास की एक चौकी पर बैठकर कहा—"तुम क्या कर रही हो ललिता ?"

ललिता बोली—"मोटा ओवरकोट रखना भूल गई थी, उसे रखने आई हूँ।" शेखर सुनने लगा तब और भी शान्ति के साथ वह कहने लगी—"पिछली बार रेल में तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ था, बड़े कोट तो कितने ही थे लेकिन खूब मोटा एक भी नहीं था। इससे मैंने वापिस आकर तुम्हारे उस कोट का नाप लेकर दर्जी से यह बनवा रखा था।" कहकर उसने एक भारी-भड़कम कोट उठाकर शेखर के आगे रख दिया।

शेखर ने उसे उठाकर देखा और बोला—"कब, मुझसे तो तुमने कभी कहा ही नहीं!"

ललिता ने हँसकर कहा—तुम 'बाबू' आदमी ठहरे, कहने से तुम इतना मोटा कोट बनवाने देते ? इसीसे नहीं कहा, बनवाकर रख दिया था ?" और उसे यथा स्थान रख दिया, फिर बोली—"ऊपर ही रखा है, खोलते ही मिल जायगा, जाड़ा लगने पर पहन लेना आलस मत करना, समझे ?"

"अच्छा" कह कर शेखर एक दृष्टि से कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा, फिर सहसा बोला—"नहीं ऐसा नहीं हो सकता !"

"क्या नहीं हो सकता ? पहनोगे नहीं ?"

शेखर ने शीघ्रता से कहा—नहीं, सो बात नहीं,—दूसरी बात है।—अच्छा ललिता, जानती हो मा की चीज वस्त सब सम्हल चुकी है कि नहीं ?

ललिता ने कहा—"जानती हूँ, दोपहर को मैंने ही उनका

७

अपने मामा तथा गिरीन्द्र बाबू को चाय पीता छोड़कर ललिता वहाँ से जल्दी के साथ शेखर के कमरे में घुसकर गैश-बत्ती के चमकदार प्रकाश में एक बाक्स रखकर शेखर के गर्म कपड़े सम्हाल-सम्हाल कर रख रही थी, शेखर के उस घर में प्रवेश करने पर ललिता ने जो उस के चेहरे की ओर देखा तो वह भय और विस्मय से दंग हो रही।

मामले मुकद्मे में सारी सम्पति खोकर जैसी शक्ल लेकर आदमी अदालतसे बाहर निकलता है, और सवेरे के उस आदमी को पहचानना मुश्किल हो जाता है,— इस एक घन्टे के अन्दर ठीक उसी तरह शेखर को ललिता मानो ठीक तौर से पहचान न सकी। उसके चेहरे पर सर्वस्व गवाँ देने का चिह्न मानो जलते लोहे से किसी ने दाग दिया हो! शेखर ने सूखे हुए कंठ से पूछा—क्या हो रहा ललिता ?"

ललिता उसके प्रश्न का कोई उत्तर न देकर अपने दोनो हाथों में उसका एक हाथ लेती हुई रुआसी-सी होकर बोली—"क्या हुआ है शेखर भइया ?"

"कहाँ. कुछ तो नहीं हुआ !" कहकर शेखर जबरदस्ती हँस

गूंथ रही है। ललिता उसके पास जाकर बैठ गई और बोली—"ओस में बैठी क्या कर रही है काली ?"

काली ने बिना सिर उठाये ही कहा—"माला गूंथ रही हूँ, आज रात को मेरी लड़की का व्याह है।"

'कब मुझसे तो कहा नहीं तूने ?"

"पहले से कोई ठीक नहीं था। बाबूजी ने अभी पत्रा देख कर कहा था कि आज रात के सिवा व्याह का कोई लग्न नहीं बनता। लड़की बड़ी हो गई हैं, अब रखी नहीं जा सकती, जैसे हो वैसे विदा करनी है।—जीजी, दो रुपये दो न, कुछ मीठा मँगवा लूँ।

ललिता ने हँसकर कहा—रुपये के वक्त जीजी क्यों ?—जा मेरे तकिये के नीचे रक्खे हैं, ले आ जाकर और क्यों री काली, गेंदे के फूल से व्याह होता है ?"

काली ने गम्भीरभाव से कहा— 'होता है। और कोई फूल न मिले तो हो सकता है। मैंने कितनी ही लड़कियाँ व्याह दी हैं जीजी ! मैं सब जानती हूँ। कहकर मीठा मँगवाने के लिये नीचे चली गई।

ललिता वहीं बैठी माला गूँथने लगी।

थोड़ी देर बाद कालीने आकर कहा—"और सबसे कह दिया गया है केवल शेखर भइया से नहीं कहा गया. जाऊँ, कह आऊँ, नहीं तो वे बुरा मानेंगे।" और वह शेखर के घर चली गई।

काली पक्की गृहिणी है, सब काम वह सिलसिले से करती है। शेखर भइया से कहकर वह नीचे उतर आई और बोली—वे एक माला मँगा रहे हैं। जाओ न जीजी, जल्दी से जाकर दे आओ; मैं तब तक इधर का काम ठीक कर डालती हूँ।—लग्न शुरू हो गया है, अब समय नहीं है।"

सब सामान संभाल कर रख दिया था। और वह फिर से एक वार सब चीजों को देख-भाल कर ताला लगाने लगी।

शेखर ने कुछ देर तक चुप चाप उसकी ओर देखते हुए पूछा— 'क्यों ललिता, अगले साल मेरी क्या हालत होगी जानती हो ?"

ललिता ने आँख उठाकर कहा—"क्यों ?"

"क्यों सो तो मैं ही जानता हूँ।" कहकर तुरत ही अपनी बात को दबा देने की गरज से उसने अपने सूखे चेहरे पर जबरदस्ती प्रसन्नता प्रकट कर कहा—"पराये घर जाने के पहले, कहाँ क्या है, क्या नहीं—सब मुझे बता जाना, नहीं तो समय पर कोई भी चीज ढूँढ़ने से नहीं मिलेगी।"

ललिता गुस्से हो कर बोली—हटो, जाओ—"

इतनी देर के बाद शेखर को अब जरा, हँसी का दौरा हुआ। वह हँसकर बोला—"हटना जाना तो है ही, परन्तु सच बताओ मेरा कैसे क्या होगा ? शौक तो मुझे सोलहों आना पूरा है, पर सहूर कौड़ी भर का भी नहीं—यह सब काम नौकर से भी होने के नहीं। अब से देखता हूँ कि तुम्हारे मामा जैसा बनना पड़ेगा — एक धोती, एक दुपट्टा,--फिर जो होगा देखा जायगा।"

ललिता चाबियों का गुच्छा जमीन पर पटक कर भाग गई।

शेखर ने चिल्ला कर कहा—"कल सवेरे आना एक वार।"

ललिता ने सुनकर चुप्पी साध ली, जल्दी जल्दी सीढ़ियां पार करके नीचे पहुँच गई।

घर जाकर देखा कि छत पर एक कोने में चाँदनी में बैठी हुई अन्नाकाली बहुत से गेंदा के फूल सामने रखकर माला

लज्जा के मारे सुर्ख हो गया, वह "सो नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं।" कहती हुई दौड़कर कमरे से बाहर चली गई।

शेखर ने बुलाकर कहा—"जाओ मत ललिता, सुन जाओ—आवश्यक काम है तुमसे—"

शेखर की आवाज उसके कान में अवश्य गई, पर वह सुनने क्यों लगी?—कहीं भी वह रुक नहीं सकी, सीधी अपने कमरे में जाकर आँखें बन्द कर अपने बिस्तर पर पड़ रही।

ललिता पिछले पाँच-छः साल से शेखर के सम्पर्क में रहकर इतनी बड़ी हुई है, लेकिन उसने कभी ऐसी बात नहीं सुनी। एक तो गम्भीर प्रकृति का शेखर कभी मजाक नहीं करता और करे भी तो इस बात की वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि ऐसी शर्म की बात उसके मुँह से निकलेगी—लज्जा से संकुचित होकर वह बीस मिनट तक पड़ी रहने के बाद उठकर बैठ गई। वास्तव में शेखर से वह भीतर ही भीतर डरती थी, इसलिये, जब उसने जरूरी काम है' कहा है, तो विचार करने लगी कि वह जाय या नहीं। इतने में उस घर की दासी की आवाज सुनाई दी,—"ललिता जीजी कहाँ हैं, छोटे बाबू बुला रहे हैं जरा—"

बाहर निकलकर ललिता ने मीठे गले से कहा—'मैं आ रही हूँ, तुम जाओ।'

ऊपर पहुँचकर ललिता ने दरवाजे की संध में से देखा कि शेखर अभी तक पत्र ही लिख रहा है। कुछ देर चुप रहकर उसने धीरे से कहा—"क्या है?"

शेखर लिखता-लिखता बोला—"पास आओ, बताता हूँ।"

"नहीं, वहीं से बताओ।"

ललिता ने सिर हिलाकर कहा—"मैं नहीं जा सकूँगी, तू दे आ काली।"

"अच्छा जाती हूँ, वह वड़ी माला मुझे दे दो।" कहकर काली ने अपना हाथ वढ़ा दिया।

ललिता माला उठाकर दे ही रही थी कि उसके मन में कुछ आया, वोली—"अच्छा दे ही आती हूँ।"

काली ने गम्भीरता के साथ कहा—"अच्छा तुम्हीं चली जाओ जीजी, मुझे वहुत काम है—मरने तक की फुरसत नहीं है।"

काली के चेहरे का भाव और वात करने का ढंग देखकर ललिता को हँसी आ गई "एकदम बड़ी वूढ़ी हो गई है।" कह कर हँसती हुई माल, लेकर वह चली गई। किवाड़ के पास पहुँच कर उसने देखा कि शेखर दत्तचित्त होकर पत्र लिख रहा है। वह दरवाजा खोलकर पीछे आ खड़ी हुई, फिर भी शेख को मालूम नहीं हुआ तव कुछ देर चुप रहकर, शेखर को चौंका देने की गरज से उसने सावधानी के साथ शेखर के गले में माला डाल दी और चट से पीछे की चौकी पर जा बैठी।

शेखर पहले तो चौंककर वोला—"काली!" फिर दूसरे ही क्षण मुँह घुमाकर देखा तो अत्यन्त गम्भीरता के साथ वोला—"यह क्या किया ललिता?"

शेखर के चेहरे के भाव से कुछ शंकित होकर ललिता उठ खड़ी हुई और वोली— 'क्यों क्या हुआ?"

शेखर ने पूर्ण गम्भीरता के साथ, कहा—"जानती नहीं; क्या हुआ? काली से जाकर पूछ आओ आज की रात गले में माला पहना देने से क्या होता है।"

अव ललिता समझ गई। क्षण-भर में उसका सारा चेहरा

की खुली छत पर एक किनारे जाकर रेलिंग पकड़े चुपचाप खड़ी रही। उस समय उसके सामने आकाश में चाँद उठ रहा था और उसकी शीतल किरणे छिटक कर आनन्द दे रही थीं। ऊपर साफ निर्मल आकाश था। वह एक बार शेखर के कमरे की ओर नजर डालकर ऊपर की तरफ देखती रही। अब तो उसकी आँखें जलने लगीं और मारे लज्जा और अभिमान के आँसू आ गये उन आँखों में। वह इतनी छोटी नहीं है कि इन सब बातों का मतलब पूरी तरह से न समझ सके, फिर क्यों उसके साथ ऐसा मर्म-स्पर्शी उपहास किया गया? इस बात को समझने योग्य उसकी उम्र भी काफी हो चुकी है कि वह कितनी तुच्छ है, कितनी नीच है।—वह अच्छी तरह जानती है कि अनाथ और निराश्रय होने के कारण उससे सब कोई स्नेह और प्यार करते हैं,—शेखर भी करता है, उसकी मा भी करती है। उसका अपना कहने को कोई नहीं है। उसका वास्तविक दायित्व किसी पर निर्भर न होने से ही गिरीन्द्र बिलकुल गैर आदमी होकर भी उसका उद्धार कर देने की बात छेड़ सका है।

ललिता आँखें बन्द कर मन ही मन कहने लगी, इस कलकत्ते के समाज में उसके मामा की अवस्था शेखर के घराने से कितनी नीची है! और वह उन्हीं मामा की भार स्वरूपा आश्रिता है! उधर बराबर के घराने से शेखर के व्याह की बातचीत हो रही है। दो दिन पहले हो या पीछे, उस घर में उसका व्याह होगा ही। इस व्याह में नवीनराय कितने रुपये वसूल करेंगे, सो सब बातें भी वह शेखर की मा के मुँह से सुन चुकी है।

फिर, शेखर उसे क्यों सहसा आज इस प्रकार अपमानित कर बैठा? यही सब बातें ललिता सामने की ओर शून्य दृष्टि से देखती हुई मन ही मन सोच रही थी, इतने में एका एक चौंक

शेखर मन ही मन हँसकर बोला—"सहसा तुमने ,यह क्या कर डाला, बताओ ?"

ललिता रूठे स्वर में बोली—"हटो, फिर वही ।" शेखर ने उसकी तरफ मुँह फेरकर कहा—"मेरा क्या कसूर है ?" तुम्हीं तो कर गई !"

"कुछ नहीं किया मैंने,—"तुम उसे लौटा दो ।"

शेखर ने कहा—"इसी लिए तो बुलवाया है ललिता। पास आओ, लौटाये देता हूँ। तुम आधा काम कर गई हो, इधर आओ, मैं उस काम को पूरा कर दूँ ।"

ललिता दरवाजे के पास कुछ देर चुपचाप खड़ी रही, उसके बाद बोली-"मैं सच कहती हूँ तुमसे, ऐसी मज़ाक भरी बातें करोगे तो मैं कभी तुम्हारे सामने न आऊँगी।—कहे देती हूँ, माला लौटा दो मुझे।"

शेखर ने टेबल की तरफ मुँह कर माला उठाकर कहा—"ले जाओ ।"

"तुम वहीं से फेंक दो ।"

शेखर ने सिर हिलाकर कहा—"बिना पास आये नहीं मिल सकती ।"

"तो मुझे आवश्यकता नहीं उस की" कहकर गुस्से होकर ललिता चली गई।

शेखर ने चिल्लाकर कहा—"लेकिन आधा काम होकर जो रह गया !"

"रहा तो रहने दो ।" कहकर ललिता वास्तव में गुसे होकर चली गई।

वह चली अवश्य गई, परन्तु नीचे नहीं गई। पूरब ओर

कुछ देर मौन रहकर शेखर ने कहा—"अब ओस में मत खड़ी रहो, जाओ, नीचे जाओ।"

"जाती हूँ।" कहकर इतनी देर बाद ललिता ने उसके पैरों पड़ कर प्रणाम किया और उठ कर खड़ी होकर धीरे से कहा—"मुझे क्या करना होगा, बता जाओ।"

शेखर हँस पड़ा। पहले तो जरा दुविधा में पड़ गया, फिर दोनों हाथ बढ़ा कर अपनी छाती के पास खींच कर उसके अधरों पर अपने अधर छुआता हुआ बोला—"कुछ भी बता जाना नहीं होगा ललिता, आज से तुम अपने आप ही समझने लगोगी।"

ललिता का सारा शरीर रोमांचित होकर सिहर उठा, वह तुरन्त ही हट कर खड़ी होकर बोली—"मैंने अचानक तुम्हारे गले में माला डाल दी, इससे क्या तुमने ऐसा किया?"

शेखर ने हँसकर सिर हिलाते हुए कहा "नहीं, मैं बहुत दिनोंसे सोच रहा हूँ, परन्तु तय नहीं कर पाया था। आज तय कर लिया, क्योंकि आज ही ठीक से समझ सका हूँ कि तुम्हारे बिना मैं रह नहीं सकता।"

ललिता बोली—"लेकिन तुम्हारे बाबूजी सुनेंगे तो बहुत नाराज होंगे, मा सुनेंगी तो दुःखित होंगी, यह नहीं हो सकता शे——"

बाबूजी सुनेंगे तो बहुत बिगड़ेंगे, यह ठीक है, पर मा बहुत प्रसन्न होंगी। खैर इसकी कोई बात नहीं, जाने दो, जो होना था सो हो गया,—अब न तो तुम ही लौटा सकती हो और न मैं ही। जाओ नीचे जाकर मा को प्रणाम कर आओ।"

कर उसने पीछे की ओर फिर कर देखा कि शेखर चुपचाप खड़ा हुआ मुस्करा रहा था और इसके प्रथम उसने जिस ढंग से शेखर के गले में फूलों की माला पहना दी थी ठीक उसी तरह से वही गेंदे की माला उसके गले में वापिस लौट आई है! रुआई के मारे उसका गला रुक-सा आया, फिर उसने जोर से विकृत स्वर में कहा—"क्यों ऐसा किया?"

"तुमने क्यों किया?"

"मैंने कुछ नहीं किया।" कहकर उसने माला को तोड़कर फेंक देनेके लिए हाथ उठाया ही था कि सहसा शेखर की आँखों की ओर देखकर वह ठिठक कर रह गई,—तोड़ कर फेंक देने की उसमें हिम्मत न आई। वह रोती हुई बोली—"मेरा कोई नहीं है इसीलिए क्या तुम मेरा इस प्रकार अपमान कर रहे हो?"

शेखर अबतक मन्द मन्द मुसकरा रहा था, ललिता की बात सुन कर वह अवाक रह गया।—यह तो नादान बच्ची की बात नही है! वह बोला—"मैं अपमान करता हूँ, या तुम मेरा अपमान कर रही हो?"

ललिता आँखों को पोंछती हुई डरती डरती बोली—"मैंने क्या अपमान किया है तुम्हारा?"

शेखर थोड़ी देर चुप रह कर स्वाभाविक भाव से बोला—"अब ज़रा विचार कर देखोगी तो मालूम हो जायगा, आज कल तुम बहुत ज्यादती कर रही थी ललिता, विदेश जाने के पहले मैंने उसे वन्द कर दिया है।" इतना कह कर वह चुप हो गया।

ललिता ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया, शिर झुका कर खड़ी रही। चन्द्रमा की शीतल चाँदनी के नीचे दोनों जने स्तब्ध हो कर खड़े रहे। केवल नीचे से काली की लड़की के व्याह की शंख-ध्वनि बार बार सुनाई दे रही थी।

नवीनराय फिर गरज कर बोले—"बताओ न जी, सच है क्या ?"

गुरुचरण ने नवीनराय के उत्तर में आँख उठा कर कहा—"जी हाँ, सच है ।"

"क्यों ऐसा काम कर डाला ? तुम्हारी तनख्वाह तो सिर्फ साठ रुपए है तुम—" मारे क्रोध के नवीनराय के मुँह से बात तक नहीं निकली ।

गुरुचरण ने आँखें पोंछ कर रुके हुए गले को साफ कर के कहा—"ज्ञान नहीं था भइया । दुःख के मारे गले में फाँसी लगा कर मरूँ या ब्रह्मसमाजी हो जाऊँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा था उस समय । अन्त में आत्मघाती होने से ब्रह्मसमाजी होना ही मुझे अच्छा मालूम हुआ, इसी से मैं ब्रह्मसमाजी हो गया ।" इतना कहकर गुरुचरण आँखें पोंछता हुआ बाहर चला गया ।

नवीन चिल्ला कर कहने लगे,—"अच्छा किया, अपने गले में फाँसी न लगा कर जात के गले में फाँसी डाल दी । अच्छा जाओ अब से हम लोगों के सामने अपना काला मुँह न दिखाना, अब जो लोग मन्त्री बने हुए हैं, उन्हीं के साथ रहना । लड़कियों को डोम चमारों के घर व्याहो जाकर ।" कह कर गुरुचरण को विदा करके उन्होंने मुँह फेर लिया । नवीन मारे क्रोध और अभिमान के कुछ तय नहीं कर सके कि क्या करें । गुरुचरण उनके हाथ से बिलकुल ही निकल गया और जल्दी हाथ आने का भी नहीं—इसी से बिल्कुल क्रोध से वे फड़फड़ाने लगे । फिलहाल गुरुचरण को और प्रकार तंग करने की तरकीब न सूझने के कारण राज मिस्त्री को बुलाकर उन्होंने छत पर दीवार उठवा दी, जिससे आने-जानेका रास्ता बन्द हो जाय !

८

अन्दाज़ तीन महीने के बाद एक रोज गुरुचरण उदास मुँह बनाये हुए आया। वह नवीनराय के कमरे में घुस कर फ़र्श पर बैठना ही चाहता था कि नवीन बाबू ने चिल्ला कर मना करते हुए कहा—"नहीं, नहीं, नहीं, यहां नहीं, उस चौकी पर जाकर बैठो। मुझसे ऐसे वे समय में नहाया न जायगा। गुरुचरण दूर एक चौकी पर सिर झुका कर बैठ गया। उसके बैठ जाने पर नवीन बाबू ने कहा—"क्यों जी, तुमने आखिर जात दे ही दी?" इसके चार रोज पहले वह नियमानुसार दीक्षा लेकर ब्रह्मसमाजी हो गया है, लेकिन वह समाचार आज नाना वर्णों से चित्रित होकर कट्टर हिन्दू नवीन के कर्ण गोचर हुआ है, नवीन की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं, लेकिन गुरुचरण उसी प्रकार चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा। उसने किसी के बिना पूछे ही यह काम कर डाला था, इससे उसके घर में भी रोने झींखने और अशान्ति की सीमा न थी।

शेखर के मन में भी इस बात की काफी आशंका थी, वह और कुछ नहीं बोला, वहाँ से उठकर दूसरी जगह चला गया। इसके बाद फिर उसे एक मिनट के लिये भी विदेश में रहने की इच्छा न रही। दो तीन रोज चिन्तित और उदास चेहरे से इधर उधर घूम-फिर कर वह एक दिन मा से बोला—"अब मुझे अच्छा नहीं लगता मा, घर चलो।"

भुवनेश्वरीने उसी समय उसकी बात मानकर कहा—"अच्छी बात है, चल शेखर, मुझे भी अब यहाँ अच्छा नहीं लगता।"

घर आकर माता-पुत्र दोनों ने ही देखा कि छत पर जाने का जहाँ रास्ता था, वहीं दीवार उठा दी गई है। यह बात मा बेटे बिना कुछ पूछे-ताछे ही समझ गये कि गुरुचरण के साथ किसी तरह का सम्बन्ध रखना,—यहाँ तक मुँह से बात चीत करना भी नवीन राय को नहीं रुचेगा।

रात को जब शेखर भोजन कर रहा था उस समय उसकी मा मौजूद थीं, उन्होंने दो एक बात करने के बाद कहा—"मालूम होता है कि ललिता की सगाई तो गिरीन बाबू के साथ ही हो रही है। मैं पहले ही से समझती थी।"

शेखर ने मुँह बिना उठाये हुए ही पूछा—"किस ने कहा?"

"उसकी मामी ने। दो पहर को तेरे बाबू जी सो गये थे तब मैं खुद उसके घर मिलने गई थी। तबसे उसने तो रो-रोकर आँख मुँह सब फुला लिया है।" क्षण भर चुप रहकर उन्होंने आँचल से अपनी आँखें पोंछकर कहा—"तकदीर है, तकदीर, शेखर, भाग्य का लिखा कोई मेट नहीं सकता,—किसे दोष दिया जायगा? खैर, तो भी गिरीन लड़का अच्छा है, पैसा भी पास है, ललिता को कष्ट नहीं होगा।" कहकर वे चुप हो गई।

उत्तर में शेखर ने कुछ नहीं कहा, सिर झुकाये हुए थालीकी

प्रवास में बहुत दूर बैठी हुई भुवनेश्वरी ने जब यह समाचार सुना तो वे रो पड़ीं और अपने लड़केसे बोलीं—"शेखर, ऐसी मति किसने दी उन्हें ?"

मति बुद्धि किसने दी, शेखर ने इसका निश्चित अनुमान कर लिया था, परन्तु उसका उल्लेख न करके वह बोला—"लेकिन मा दो चार दिन बाद तुम्हीं लोग तो उन्हें जात से छेक कर अलग कर देते। इतनी लड़कियों का ब्याह भला वह कैसे करते, मेरी तो तुच्छ समझ में ही नहीं आता।"

भुवनेश्वरी ने सिर हिला कर कहा—"कुछ भी रुका नहीं रहता शेखर। और सिर्फ इसके लिये ही जात देनी होती तो बहुतों को दे देनी पड़ती। ईश्वर ने जिन्हें संसार में भेजा है, उनका भार अपने ही ऊपर उठा रखा है।"

शेखर चुप रहा, भुवनेश्वरी आँखें पोंछती हुई कहने लगी--"ललिता बिटिया को यदि साथ ले आई होती तो जिस प्रकार से होता उसका किनारा मुझे ही करना पड़ता, और करती भी। मैं तो जानती थी कि सचमुच ही उसकी सगाई होनेवाली है।"

शेखर अपनी मा के चेहरे की ओर देख, जरा शर्मिंदा होकर बोला—"ठीक तो है मा, अब घर चलकर ऐसा ही करना।" वह तो खुद ब्रह्मसमाजी हुई नहीं;—उसके मामा हुए हैं।—और सच पूछो तो वे भी कोई उसके अपने नहीं होते। ललिता के और कोई है नहीं, इसीसे उनके घर पल रही है।"

भुवनेश्वरी ने जरा सोच कर कहा—"सो तो ठीक है, लेकिन तुम्हारे बाबू जी का स्वभाव दूसरा है, वे किसी प्रकार भी राजी नही होंगे। ऐसा भी हो सकता है कि उन लोगों के साथ मिलने जुलने तक न दें।"

उनके मन का भाव शेखर समझ गया, इसलिये सम्हलने का समय देने के पहले ही उसने बात छेड़ी दी। कल सवेरे की गाड़ी से आने की वात, मा के रोग शान्त होने की बात, पश्चिम की आव-हवा की बात तथा और भी अनेकनेक समाचार वह अनर्गल सुनाता चला गया, और अन्त में उस अपरिचित युवक के मुह की ओर देख कर चुप हो गया।

गुरुचरण ने इतनी देर में अपने आप को बहुत कुछ काबू में कर लिया था, उसने उस नये लड़के का परिचय देते हुए कहा—"ये अपने गिरीन के मित्र हैं, एक ही जगह घर है, एक साथ पढ़े हैं, बहुत ही अच्छे योग्य हैं। श्यामबाजार रहते हैं, फिर भी हम लोगों के साथ परिचय हो जाने के बाद से अक्सर आ कर मुलाक़ात कर जाते हैं।"

शेखर गर्दन हिलाता हुआ मन ही मन कहने लगा, 'हाँ, बहुत ही अच्छे, बहुत ही योग्य हैं।" कुछ देर चुप रह कर बोला—"चाचा जी, और सब खबर तो अच्छी है?"

गुरुचरण ने उत्तर नहीं दिया, सिर झुकाये चुपचाप बैठे रहे, शेखर को उठते देख सहसा रुआसे कण्ठ से बोल उठे—'बीच बीच में आ जाया करो बेटा, एकदम छोड़ मत देना।—सब बात सुन तो ली होगी?"

"सुन तो ली है।" कहकर शेखर घर के भीतर चला गया।

दूसरे ही क्षण गुरुचरण को स्त्री के रोने की आवाज सुनाई दी, बाहर बैठे हुए गुरुचरण धोती के छोर से अपनी आँखों के आँसू पोंछने लगे और गिरीन्द्र अपराधी की तरह मुँह बनाकर खिड़की से बाहर की ओर देखता हुआ चुपचाप बैठा रहा। ललिता पहले ही उठ कर चली गई थी।

चीजें इधर उधर करने लगा। थोड़ी देर बाद मा के उठ जाने पर वह भी उठा और हाथ-मुँह धोकर बिस्तर पर जा पड़ा।

दूसरे दिन संध्या के बाद जरा टहल आने के लिये वह सड़क पर निकला था। उस समय गुरुचरण की बाहर वाली बैठक में दैनिक-चाय-पान-सभा का अधिवेशन हो रहा, था, और काफी उत्साह के साथ हँसी-मजाक और वार्तालाप भी हो रहा था। वहाँ का शोर-गुल कान में पड़ते ही शेखर ने सावधान होकर कुछ सोचा और फिर धीरे-धीरे आगे बढ़कर उस शब्द का अनुसरन करता हुआ वह गुरुचरण की बाहर वाली बैठक में पहुँच गया। उसके उपस्थित होते ही वहाँ का शोर गुल खतम हो गया और उसकी तरफ देखते ही सब के चेहरों का भाव बदल गया।

यह बात ललिताके सिवा किसी को भी मालूम न थी कि शेखर लौट आया है। आज गिरीन के सिवा और भी एक सज्जन मौजूद थे। वह ताज्जुब भरी निगाह से शेखर की तरफ देखने लगे। गिरीन्द्र का चेहरा अत्यन्त गम्भीर हो गया, वह अपने सामने वाली दीवार की ओर देखने लगा। सब से अधिक शोर-गुल मचा रहे थे गुरुचरण खुद, उनका चेहरा फीका पड़ गया। ललिता उनके पास बैठी हुई चाय बना रही थी, उसने एक बार मुँह उठा कर झुका लिया।

शेखर ने आगे बढ़कर तख्तपर सिर झुकाकर प्रणाम किया और किनारे बैठकर हँसता हुआ बोला—"वाह, यह कैसी बात है,—एक दम ही सब शान्त हो गये।"

गुरुचरण ने धीमे स्वर में शायद आशीर्वाद दिया; या क्या कहा, कुछ समझ में न आया।

"डर किसका ?"

"तुम खूब हो ! डर नहीं होगा ? तुम यहाँ नहीं थे, मा भी नहीं थी, बीचमें मामा न जाने क्या कर बैठे। अब, मा अगर मुझे अपने घर में न लें तो ?"

शेखर कुछ समय तक चुप रह कर बोला—"सो तो ठीक है, वे नहीं लेना चाहेंगी, तुम्हारे सामने दूसरों से रुपये लिये हैं,—यह सब बातें उन्हें मालूम हो गई हैं, इसके अतिरिक्त अब तुम हो गई हो ब्रह्मसमाजी और हम लोग हैं हिन्दू !" अन्नाकालीने इसी समय रसोई घर में से पुकारा—"जीजी, मा बुला रही है।"

ललिता ने चिल्ला कर कहा—"आती हूँ।" फिर स्वर धीमा करके बोली—"मा कुछ भी हों,—"पर जो तुम हो सो मैं हूँ। मा अगर तुम्हें नहीं छोड़ सकती तो मुझे भी न छोड़ेंगी। और रही गिरीन बाबू से रुपया लेने की बात, सो उनके रुपये वापिस कर दिये जायँगे। दूसरे कर्ज का रुपया चाहे दो रोज पहले हो या पीछे, देना तो पड़ेगा ही।"

शेखर ने पूछा—"इतने रुपये पाओगी कहाँ से ?"

ललिता शेखर के मुँहकी ओर एक बार आँख उठाकर क्षण भर चुप रहकर बोली—"जानते नहीं, औरतों को रुपये कहाँ से मिलते हैं ? मुझे भी वहीं से मिलेंगे।"

अब तक शेखर धैर्य्य के साथ बातचीत करता हुआ भी अन्दर ही अन्दर जल रहा था, अब व्यंग भरे शब्दों में बोला—"लेकिन मामा ने तुम्हें बेंच जो दिया है ?"

ललिता अन्धेरे में शेखर के चेहरे का भाव न देख सकी, परन्तु कंठस्वर का परिवर्तन उसे मालूम हो गया। उसने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया,—"उनका तुम मजाक मत उड़ाओ। उनके

कुछ देर बाद शेखर रसोई-घर से निकल वरामदे को पार करता हुआ आँगन में उतर रहा था, इतने में उसने देखा कि अन्धेरे में दरवाजे की आड़ में ललिता खड़ी है। उसने जमीन के साथ सिर लगा कर शेखर को प्रणाम किया, और उठ कर खड़ी हो गई। उसका मुँह बिलकुल शेखर की धोती के पास पहुँच गया। वह क्षण-भर चुपचाप खड़ी रह कर न जाने क्या आशा करती रही, उसके बाद चुपके से पीछे हटकर बोली—"मेरे पत्र का उत्तर क्यों नहीं दिया ?"

"कब मुझे तो तुम्हारा कोई पत्र ही नहीं मिला,—क्या तुमने लिखा था ?"

ललिता बोली—"बहुत-सी बातें। खैर जाने दो उसे। सब बातें सुन तो ली हैं, अब तुम्हारी क्या आज्ञा है मुझे बताओ।"

शेखर ने आश्चर्य—भरे श्वर में कहा—"मेरी आज्ञा ? मेरी आज्ञा से क्या होगा ?"

ललिता शंकित होकर शेखर के मुँह की ओर देखती हुई बोली—"क्यों ?"

"और नहीं तो क्या ललिता ! मैं किसको आज्ञा दूँ ?"

"मुझे और किसे दे सकते हो ?"

"तुम्हें भी क्यों देने लगा ? और दूँ भी तो तू सुनने क्यों लगी ?"

शेखर का कण्ठ गम्भीर और करुण हो गया।

अब तो ललिता का चेहरा बिलकुल रोआसा-सा हो गया और मन ही मन बहुत भयभीत हो गई। वह शेखर के पास आकर उसी करुण कण्ठ से बोली—"जाओ, इस समय तुम्हारी हँसी अच्छी नहीं लगती। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, क्या होगा बताओ, मारे डर के मुझे तो रात में नींद तक नहीं आती।"

९

शेखर विह्वल की भाँति उस रात को बहुत देर तक रास्ते में चक्कर लगाता रहा और घर जाकर सोचने लगा कि उस दिन की जरा सी ललिता,—वह इतनी बातें कहाँ से सीख गई? इस प्रकार निर्लज्ज की भाँति उसने इतनी बातें मेरे आगे कहीं कैसे?

आज ललिता के व्यवहार से सचमुच ही वह अत्यन्त विस्मित और क्रुद्ध हो गया था। लेकिन, अगर वह शान्त चित्त से विचार कर देखता कि इस क्रोध का असल करण क्या है, तो मालूम हो जाता कि उसका गुस्सा असल में ललिता पर नहीं, बल्कि अपने ही ऊपर था।

ललिता को छोड़कर इन तीन महीनों के प्रवास में उसने अपनी कल्पनाओं में अपने ही को आवद्ध कर लिया था। सिर्फ काल्पनिक सुख-दुःख और हानि लाभ का हिसाब लगाकर ही वह इस बात का ख्याल कर रहा था कि ललिता का उसके जीवन में कितना स्थान है, भविष्य के साथ उसका कैसा अच्छेद्य-बन्धन

दुःख कष्टों से तुम भले ही जानकार न हो, लेकिन संसार उन्हें जनाता है—" कहकर उसने एक घूंट-सा भरा फिर जरा बगलें झाँक कर कहा—"इसके सिवा, उन्होंने रुपये लिये हैं मेरे व्याह होने के पहले। मुझे वेचने का अधिकार उन्हें है ही नहीं और न उन्होंने वेचा ही है। यह अधिकार सिर्फ तुम्हीं को है, तुम चाहो तो रुपये देने के डर से वेच भी सकते हो।"

इतना कहकर वह उत्तर के लिये प्रतीक्षा किये बिना ही जल्दी से अन्यत्र चली गली गई।

विश्वास कर बैठेगी कि उसका सचमुच ही ब्याह हो चुका है और धर्मानुसार किसी भी कारण से इसमें फर्क नहीं आ सकता—ये सब बातें शेखर ने विचार कर नहीं देखी थीं। यद्यपि उसने अपने ही मुंह से कहा था कि जो होना था सो हो गया, अब न तो तुम्हीं लौटा सकती हो और न मैं ही, परन्तु आज जिस तरह से वह सब कुछ विचार कर देख रहा है, उस दिन उस समय इस प्रकार विचारनें की न तो शक्ति ही थी और न शायद इतना अवकाश ही। उस समय सिर के ऊपर चाँद था, चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी, गल में माला झूम रही थी, प्रियतमा का वक्ष-स्पन्दन अपनी छाती पर पाकर उसकी प्रथम अनुभूति का मोह था, और था प्रणयी जनो ने जिसे अधरामृत कहा है उसके पीना का तीव्र नशा। उस समय स्वार्थ और सांसारिक भलाई-बुराई का कुछ ख्याल नहीं था, और न अर्थ-लोलुप पिता की रुद्र मूर्ति ही आँखों के सामने आई थी। सोचा था, मा तो ललिता को बहुत प्यार करती ही हैं, उन्हें सहमत करा लेने में कुछ कठिनाई न होगी और भइया के द्वारा पिताजी को किसी प्रकार कोमल करा लेने में अन्त तक शायद, काम बन जायगा। इसके सिवा, गुरुचरण ने तब इस प्रकार अपने को विच्छिन्न करके उनकी आशा का मार्ग पत्थर से इस तरह मजबूती के साथ बन्द भी नहीं कर डाला था।

वास्तव में शेखर के लिये चिन्ता करने की ऐसी कोई खास बात रही नहीं थी।

अब वह अच्छी तरह समझ रहा था कि पिता को राजी कराना तो दूर रहा, माता को राजी करना भी सम्भव नहीं।—यह बात इस समय मुँह से निकाली भी नहीं जा सकती।

है, उसकी अनुपस्थिति में उसका जीना कितना कठिन और कष्टकर है। ललिता लड़कपन ही से गृहस्थी में मिल-जुल गई थी, इसी से उसे न वह खास तौर से गृहस्थी के भीतर मा-बाप और भाई-बहन के बीच एक साथ मिलाकर ही देख सका, और न कभी इसका विचार ही कर पाया।

उसकी यह दुश्चिन्ता बराबर धारा-प्रवाह का चल रही थी कि ललिता को शायद वह न पा सकेगा, माता-पिता इस ब्याह में सम्मति न देंगे, और शायद वह और किसी की होकर रहेगी। इससे विदेश जाने के पहले, उस रात को, वह जबरन उसके गले में माला डालकर इस दिशा की दरार को जोड़ गया था।

पश्चिम में रहकर गुरुचरण के धर्म-परिवर्तन का हाल सुन, वह व्याकुल चित्त से दिन-रात यही चिन्ता करता रहा था कि कहीं ललिता से हाथ न धोना पड़े। सुखकर हो या दुःखकर, दुश्चिन्ता की इसी दिशा से वह परिचित था। आज ललिता की साफ बात ने उसकी चिन्ता की इस दिशा को जोर के साथ बन्द कर दिया और वह धारा बिलकुल उलटी दिशा में बहने लग गई। पहले उसे चिन्ता थी कि शायद वह छोड़ी नहीं जा सके।

श्यामबाजार वाला सम्बन्ध टूट गया था। वे लोग भी इतने रुपये देने के नाम से अन्त में अपना कदम हटा चुके थे और शेखर की मा को भी वह लड़की पसन्द न थी। अतएव, उस बला से शेखर को फिलहाल यद्यपि छुटकारा मिल गया था, पर नवीनराय दस-बीस हजार की बात नहीं भूले थे, और उस तरफ से वह निश्चेष्ट भी नहीं हो गये थे।

शेखर खूब गौर के साथ सोच रहा था कि क्या किया जाय! उस रात का उसका वह काम इतना बड़ा गम्भीर रहस्य धारण करेगा, और ललिता उस पर इस तरह बिना किसी संशय के

१०

असम्भव जानकर शेखर ने ललिता की आशा कत्तई छोड़ दी थी। पहले-पहले वह कुछ दिनों तक मन ही मन अत्यन्त भयभीत रहा—कहीं अचानक वह आकर सब बातें प्रकट न कर दे। कहीं इस विषय को लेकर उसे सबके सामने जवाब देही न करनी पड़े! परन्तु किसी ने उससे जवाब तलब नहीं किया। कोई बात प्रकट हुई है या नहीं, सो भी नहीं मालूम हुआ; यहाँ तक कि दोनों घरों में एक दूसरे का आना जाना भी नहीं हुआ।

शेखर के कमरे के सामने जो खुली छत थी, उस पर खड़े होने से ललिता को छत का सब कुछ अच्छी तरह दिखाई देता था। कहीं ललिता से सामना न हो जाय, इस भय से वह छत पर भी नहीं जाता। परन्तु जब बिना किसी विघ्न के महीना-भर बीत गया तब वह बेफिक्री की साँस लेकर मन ही मन बोला, आखिर कुछ भी हो, औरतों के लिहाज शरम तो होती

एक गहरी साँस खींचकर फिर एक वार अस्फुट स्वर में शेखर ने दोहराया कि क्या किया जाय।

ललिता को वह अच्छी तरह पहचानता है, उसे उसने अपने हाथों से वनाया है,—एक वार जिसे वह धर्म समझ कर अङ्गिकार कर चुकी है, उसे वह किसी भी प्रकार छोड़ नहीं सकती। उसने दृढ़ मन से समझ लिया है कि मैं शेखर की धर्म-पत्नी हूँ, इस लिये वह आज सन्ध्या को अन्धेरे में उसकी छाती के समीप आकर. मुँह के पास मुँह लाकर इस तरह आ खड़ी हुई थी!

उसके विवाह की वात चीत गिरीन्द्र के साथ हो रही है,—लेकिन कोई भी उसे इसके लिए राजी नहीं कर सकता। किसी प्रकार भी अव वह चुप नहीं रहेगी! अव वह सव वातें प्रकट कर देगी! शेखर का चेहरा और आँखें उत्तप्त हो उठीं। वास्तव में वात भी सच है, वह केवल माला वदलकर ही तो शान्त नहीं हुआ, उसने उसे अपनी छाती के साथ लगाकर उसका चुम्वन भी तो लिया था। ललिता ने वाधा नहीं दी; इसमें दोप नहीं, इसी से वह चुप रही, इसका उसे पूर्ण अधिकार था, इसी लिये वह चुप रही। अव इस व्यवहार का उत्तर वह किसी के आगे क्या देगा?

माता-पिता को विना राजी किये ललिता के साथ उसका विवाह नहीं हो सकता, यह निश्चित है। लेकिन गिरीन्द्र के साथ ललिता का विवाह न होने के कारण प्रकट होने के वाद वह घर और वाहर सर्वत्र अपना मुँह कैसे दिखा सकेगा?

भुवनेश्वरी ने बातों ही बातों में एक रोज कहा,—"इधर तैने ललिता को देखा है शेखर ?"

सिर हिलाकर शेखर ने उत्तर दिया,—"नहीं तो, क्यों ?"

भुवनेश्वरी बोली—"अन्दाज दो महीने बाद उसे कल छत पर देखकर मैंने उसे बुलाया—लड़की न जाने कैसी हो गई है। दुबली-पतली, मुँह सूखा हुआ,—जैसे वहुत बड़ी हो गई हो। वह ऐसी गम्भीर मालूम हुई कि किसी प्रकार भी चौदह वर्ष की नहीं जचती !" इतना कहते-कहते भुवनेश्वरी की आँखों में आँसू भर आये। हाथ से अपने आँसुओं को पोंछती हुई भरे हुए गले से वह बोली,—"मैली-कुचैली साड़ी पहने थी, पल्ले पर जोड़ लगा था,—मैंने पूछा,—"तेरे पास और साड़ी नहीं है क्या बिटिया? वह बोली 'है', लेकिन मुझे उसकी बात का विश्वास नहीं हुआ। किसी भी दिन उसने अपने मामा के दिये हुए कपड़े नहीं पहने, मैं ही दिया करती थी,—सो मैंने भी छः सात महीने से कुछ नहीं दिया।" इसके आगे भुवनेश्वरी बोल न सकी, अपनी साड़ी के छोर से आँखें पोंछने लगी—वास्तव में वह ललिता को अपनी लड़की की तरह मानती थी।

दूसरी ओर निगाह किये शेखर चुपचाप बैठा रहा।

बहुत देर बाद मा ने फिर कहा,—"मेरे सिवा किसी दिन उसने मुँह खोलकर किसी से कुछ माँगा भी नहीं। मैं ही उसे खाने को दिया करती थी!—वह मेरे ही आस-पास घूमा करती थी,—मैं उसकी मुख-मुद्रा देखते ही समझ जाती कि वह भूखी है। मुझे उसी बात की याद आती है शेखर, अब भी शायद वह भूखी उसी तरह मारी-मारी फिरती होगी, लेकिन माँगती न होगी! कोई न तो उसकी बात समझता होगा और न कुछ पूछता होगा। मुझे वह केवल 'मा' कहती ही न थी बल्कि मा की

ही है, वे ये सब बातें प्रकट कर ही नहीं सकतीं। शेखर ने सुन रक्खा था कि औरतों की छाती फटे तो फटे पर मुँह नहीं फटता। इस बात पर उसे विश्वास हो गया और सृष्टिकर्त्ता ने उनके शरीर में ऐसी कमजोरी दी है, इसके लिये उसने मन ही मन उसकी प्रशंसा भी की!—मगर फिर भी उसे शान्ति क्यों नहीं मिल रही है? जब से वह समझ गया कि अब भय की कोई बात नहीं, तभी से उसकी छाती में एक प्रकार की अद्भुत वेदना-सी क्यों इकट्ठी होती जा रही है?—रह-रहकर हृदय का अन्तर तम मर्मस्थल तक इस प्रकार निराशा, वेदना और आशंका से क्यों काँप उठता है? ललिता क्या अब किसी से कुछ न कहेगी, और किसी के हाथ अपने को सौंपते समय तक मौन ही बनी रहेगी?—इस बात का विचार करते ही कि उसका व्याह हो चुका है और वह अपने पति के घर चली गई है, उसके मन और शरीर में आग-सी क्यों जल उठती है?

इसके पहले वह सन्ध्या के समय बाहर घूमने न जाकर सामने की खुली छत पर टहला करता था, अब भी उसी प्रकार टहलने लगा; परन्तु एक दिन भी उसे उस घर का कोई दिखाई न दिया। केवल एक रोज अन्नाकाली छत पर किसी काम से आई थी, लेकिन उसकी ओर देखते ही उसने अपनी निगाह नीची कर ली और शेखर के यह तय करने के पहले ही कि वह उसे बुलाये या नहीं, वह वहाँ से गायब हो गई। शेखर मन में समझ गया कि हम लोगों ने जो छत का रास्ता बन्द करवा दिया है, उसका माने यह छोटी-सी लड़की काली तक भी समझ गई है।

और एक महीना बीत गया।

उस पर रोज घर में रोना-धोना,—एक मिनट के लिए भी विचारे को शान्ति नहीं।"

शेखर चुपचाप मा की बातें सुन रहा था, अब और भी चुप रहा। थोड़ी देर बाद जब उसकी मा चली गई, अपने विस्तरे पर जाकर पड़ रहा और ललिता की बात सोचने लगा।

जिस गली में शेखर का मकान है, उसमें दो गाड़ी आसानी से जा सके, इतना स्थान न था। एक गाड़ी एक तरफ बिलकुल किनारे से सटकर न खड़ी हो तो दूसरी उसके बगल से नहीं निकल सकती। आठ दस रोज बाद एक रोज शेखर की आफिस वाली गाड़ी गुरुचरण के मकान के सामने रास्ता रुका रहने के कारण खड़ी हो गई। शेखर अपने आफिस से आया था उतर कर पूछने से मालूम हुआ कि डाक्टर आया है।

शेखर ने कुछ दिन पहले अपनी मा से सुना था कि गुरुचरण की यबीयत ठीक नहीं रहती। उस बात का ख्याल कर वह अपने घर नहीं गया, सीधा गुरुचरण के मकान में घुस, उसके सोने वाले कमरे में जा पहुँचा। बात विलकुल ठीक निकली। गुरुचरण निर्जीव से विस्तर पर पड़े थे। एक ओर ललिता और गिरीन्द्र सूखा-सा मुँह लिये बैठे थे। सामने एक कुरसी पर बैठा डाक्टर रोगी की परीक्षा कर रहा था।

गुरुचरण ने अस्फुट स्वर में उसे बैठने के लिये कहा और ललिता माथे का पल्ला जरा नीचा कर घूम कर बैठ गई।

डाक्टर उसी महल्ले का रहने वाला था, वह शेखर को पहचानता था। रोग की परीक्षा कर, और दवा आदि की व्यवस्था करके वह शेखर के साथ बाहर आकर बैठ गया। गिरीन्द्र पीछे से आकर रुपये दे, डाक्टर को विदा करने लगा

तरह मानती और प्यार भी करती थी।" मा के मुँह की ओर आँखें करते शेखर से न बना, वह जिस ओर देख रहा था उसी ओर देखता हुआ बोला,—"ठीक तो है मा, उसे बुलाकर कुछ पूछ क्यों नहीं लेती कि उसे किस चीज की दरकार है ?

"वह कोई चीज लेगी क्यों ? तुम्हारे पिता ने जाने-आने का रास्ता तक बन्द कर दिया ! मैं ही भला किस मुँह से उसे कुछ देने जाऊँ ? माना कि उसके मामा ने दुःख में पड़कर एक भूल कर डाली तो हम लोग तो उनके अपने ही जैसे हैं,—चाहिये तो यह था कि कुछ प्रायश्चित्त-प्रायश्चित करवा करवू कर बात पर परदा डाल देते। ऐसा न कर उल्टा उन्हें छेककर बिलकुल अपने से दूर कर दिया ! और असल बात तो यह है कि इन्हीं से तंग आकर बिचारे को जोत खोनी पड़ी है। यह बराबर उसके ऊपर तगादे का बोझ लादे रहते थे,—मन में घृणा उत्पन्न होते ही आदमी सब कुछ कर डालता है। बल्कि मैं तो कहूँगी कि उन्होंने अच्छा ही किया है। वह गिरीन लड़का हम लोगों से उनका कहीं अधिक अपना है। उसके साथ ललिता का विवाह हो जाय तो वह सुख से रहेगी, इतना तो मैं भी जानती हूँ। सुना है, अगले महीने में विवाह होगा।"

तुरत मा की ओर मुँह करके शेखर ने पूछा—"अगले महीने ही होगा क्या ?"

"सुना तो ऐसा ही है।"

शेखर ने और कोई बात नहीं पूछी।

भुवनेश्वरी कुछ देर चुप रहकर कहने लगी,—"ललिता के मुँह से ही सुना था कि उसके मामा का शरीर आजकल ठीक नहीं रहता। सो सच ही है। एक तो उसके मन में सुख नहीं,

मानो उससे बिलकुल परिचय ही नहीं है। इसके अलावा उसके सामने ही गिरीन को बुलाकर न जाने क्या क्या सलाहें कीं। और मजा यह कि एक दिन उसीके साथ थियेटर जाने से उसने रोक दिया था।

फिर भी शेखर ने एक बार सोचने का प्रयास किया कि शायद उसने उसके अपने गुप्त सम्बन्ध का ख्याल करके शरम के मारे ऐसा व्यवहार किया हो। मगर ऐसा भी किस प्रकार सम्भव हो सकता है?—तो क्या इतनी बात हो जाने पर भी वह इतने दिनों में एक भी बात किसी भी बहाने उससे पूछने का प्रयास नहीं कर सकती थी?

वह विचारों में लीन था। सहसा बाहर से मा की आवाज सुनाई पड़ी। वे पुकार कर कह रही थीं,—"कहाँ है तू अभी तक हाथ मुँह नहीं धोया,—सन्ध्या का समय हो रहा है, यह मालूम नहीं हुआ?"

शेखर शीघ्रता से उठ खड़ा हुआ और इस ढंग से मुँह फेर कर जल्दी से नीचे उतर गया जिसमें मा उसका चेहरा न देख सके।

इधर कई दिनों से शेखर के मन में नाना प्रकार की बातें अनेक शब्द धारण कर रात दिन उसके मन में आती जाती रही हैं पर केवल एक बात ही वह नहीं सोचता था कि वास्तव दोष किसका है। उसने आजतक एक भी बात आशा की उससे न कही थी, और न उसे ही कहने का मौका दिया था। बल्कि इस भय से कि कहीं राज न खुल जाय और यह किसी प्रकार का दावा न कर बैठे, वह पत्थर के समान निश्चेष्ट हो रहा था, और अपनी ही ईर्ष्या से, अपने ही क्रोध से, अपने ही अभिमान और अपने ही अपमान से, अपने आप जल कर

तो उसने सावधान कर दिया कि रोग अभी भी अधिक नहीं बढ़ा है, इस समय आब-हवा बदलने की खास जरूरत है।

डाक्टर के चले जाने पर दोनों फिर गुरुचरण के पास आ कर खड़े हो गये।

ललिता ने इशारे से गिरीन्द्र को एक ओर बुलाया और धीरे-धीरे उससे कुछ कहनें लगी। शेखर सामने वाली कुरसी पर सन्न होकर गुरुचरण की ओर देखता रहा। गुरुचरण पहले से ही उस ओर करवट लिये पड़े हुए थे। उन्हें शेखर का दुबारा आना मालूम नहीं हुआ।

कुछ देर चुपचाप बैठने के बाद शेखर वहाँ से चल पड़ा। तब तक ललिता और गिरीन्द्र उसी प्रकार चुपके चुपके बातें कर रहे थे। उससे न तो किसी ने बैठने को कहा, और न किसी ने कोई बात तक पूछी।

आज वह अच्छी तरह समझ गया कि ललिता ने अब उसे उस गुरुतर भार से सदा के लिये मुक्त कर दिया है,—अब वह निर्भयता पूर्वक दम ले सकता है।—अब किसी प्रकार की शंका नहीं. अब ललिता उसे न फाँसेगी। घर आकर हजारों बार उसके मन में यही बात दौड़ी कि आज वह अपनी आँखों से देख आया है; गिरीन ही उस घर का परम बन्धु और अपना आदमी है,—सबकी आशा और भरोसा उसी पर है और ललिता के भविष्य का आश्रय भी वही है। मैं अब उन लोगों का कोई नहीं हूँ,—ऐसे विपत्ति के समय भी ललिता मुझसे जरा सी सलाह तक की आशा नहीं रखती!

शेखर सहसा "उंफ" करके एक गद्दीदार आराम-कुरसी पर सिर नीचा कर बैठ गया। ललिता ने उसे देख, माथे का पल्ला नीचा करके मुँह फेर लिया था जैसे बिलकुल ही गैर हो,—

ललिता अब तक चुपचाप बैठी थी, उठकर टेबिल पर एक चाभी रखती हुई बोली,—'आलमारी की चाभी अब तक मेरे पास ही थी," फिर जरा हँसकर बोली,—लेकिन रुपया इसमें एक भी नहीं है, सब खर्च हो गये हैं।"

शेखर चुप रहा।

काली बोली—'चलो जीजी, रात हो रही है।

ललिता के कुछ कहने के पहले ही अब की बार शेखर सहसा व्यस्तता के साथ बोल उठा,—"काली, नीचे से जरा मेरे लिये दो बीड़ा पान तो ले आ बहन।"

ललिता ने काली का हाथ मसक कर कहा,—"तू यहीं बैठ काली, मैं लाये देती हूँ।" और जल्दी से नीचे चली गई। थोड़ी देर बाद पान लाकर उसने काली के हाथमें थमा दिये, और काली ने वह पान शेखर को दे दिये।

पान हाथ में लेकर शेखर चुपचाप बैठा रहा।

'चलती हूँ शेखर भइया।" कहकर काली ने पैरों के पास आकर जमीन पर सर रखकर प्रणाम किया, ललिता ने भी जहाँ खड़ी थी, वहीं से जमीन पर माथा रख कर प्रणाम किया, और दोनों की दोनों धीरे धीरे चली गईं।

अपनी भलाई बुराई और आत्म-सम्मान लिये हुए शेखर पाण्डुर मुखसे विह्वल हतबुद्धि की तरह सन्नाटा खींच कर बैठा रहा। ललिता आई और जो कुछ कहना था, कहकर सदा के लिए विदा होकर चली गई। इस प्रकार सारा समय बीत गया, मानो कहने को उसे कुछ था ही नहीं। इस बात को शेखर मन ही मन समझ गया कि ललिता काली को सोच समझ कर ही साथ लाई थी, कारण वह नहीं चाहती थी कि कोई बात उठे।

भस्म हो रहा था। शायद किसी प्रकार संसार के सभी पुरुष स्त्रियों का विचार करते हैं और इसी प्रकार जलते रहते हैं।

उसी भीतरी आग की जलन में उसके सात दिन कट गये, आज भी सन्ध्या के वाद वह अपने एकान्त कमरे में वही आग सुलगाये वैठा था, सहसा दरवाजे के पास शब्द सुन चौंक पड़ा। ज्योंही उसने उस ओर मुँह करके देखा, त्योंही उसका हृदय उवल पड़ा। काली का हाथ पकड़े ललिता कमरे के अन्दर आकर नीचे गलीचे पर बैठ गई है। वैठ जाने के वाद काली ने कहा,—"शेखर भइया, हम दोनों तुमको प्रणाम करने आई हैं,—कल हम लोग चली जायँगी !"

शेखर के मुँह से काली की बात का उत्तर नहीं निकला, वह केवल एकटक देखता रहा।

काली बोली,—तुम्हारे चरणों में रहकर वहुत अपराध किये हैं शेखर भइया, सो सव भूल जाना।"

शेखर अच्छी तरह जान गया कि इसमें से एक भी वात काली की अपनी नहीं है, वह सिखाई हुई बोल रही है। उसने पूछा,—'कल कहाँ जा रही हो तुम लोग ?"

"पश्चिम। बाबूजी को लेकर हम लोग सभी मुंगेर जायँगे। वहाँ गिरीन बाबू का मकान है। बावूजी के अच्छे हो जाने पर भी सम्भवतः हम लोगों का अव यहाँ आना न होगा। डाक्टर ने कहा है कि यहाँ वावूजी की तवीयत कभी ठीक नहीं रह सकती।"

शेखर ने पूछा—इस समय उनकी तवीयत कैसी है ?"
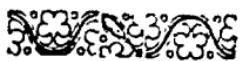
"अच्छी है" कह कर काली ने आंचल के भीतर से कई एक साड़ियाँ निकाल कर दिखाते हुए कहा,—"ताई जी ने दी हैं ये।"

११

टूटे शरीर को जोड़ना बहुत कठिन है। मुँगेर की आब हवा से भी गुरुचरण का टूटा शरीर जुड़ कर अच्छा न हो सका। साल भर बाद वह अपने दुःख-कष्टों का बोझा उतार कर हमेशा के लिये संसार से चल बसे। गिरीन्द्र वास्तव में उन्हें अधिक चाहने लगा था। वह अन्त तक उनके लिये यथा-साध्य चेष्टा करता रहा। लेकिन कुछ न हुआ।

संसार से विदा लेते समय गुरुचरण ने गिरीन्द्र का हाथ पकड़ कर आँसू भरे नेत्रों से देखते हुए अनुरोध किया था कि तुम भी कभी किसी दिन ग़ैर न हो जाना और यह गम्भीर बन्धुत्व भगवान करें निकट आत्मीयता में परिणत हो जाय। वे अपनी आँखों से यह देखकर नहीं जा सके,—बीमारी की झंझट में अवकाश नहीं मिला, परन्तु परलोक में रह कर वे देख सकेंगे कि गिरीन्द्र ने उस समय सानन्द और सच्चे अन्तः करण से उन्हें वचन दिया था।

इसके वाद शेखर का सारा शरीर न जाने कैसा होने लगा, जी मचला उठा, सिर में चक्कर आने लगा,—आखिर वह उठ कर विस्तरे पर गया और आँखें वन्द कर सो रहा।

इच्छा करने लगा कि कब उसका व्याह हुआ, और उसके साथ वह किस प्रकार से रहती है—इत्यादि।

गुरुचरण के मकान में अब कोई किरायेदार नहीं रहता। वह मकान दो महीने से खाली पड़ा है। एक बार शेखर के मन में आया कि चारु के बाप से जाकर पूछ लें क्योंकि उन्हें गिरीन्द्र का सारा हाल मालूम होगा। क्षण भर के लिये बक्स सजाना बन्द कर शून्य दृष्टि से वह खिड़की की ओर मुँह करके यही सब सोचता रहा। इतने में दरवाजे के बाहर से पुरानी दासी ने आकर कहा,—"छोटे बाबू, आपको काली की मा ने बुलाया है।"

शेखर ने मुँह फेरकर उसकी ओर अत्यन्त ताज्जुब के साथ देखते हुए कहा,—"काली की मा ?"

दासी ने हाथ से गुरुचरण के मकान की ओर संकेत करके कहा,—"अपनी काली की मा। छोटे बाबू, वे सब रात को मुँगेर से लौट आई हैं।"

"चलो, आता हूँ।" कह कर वह उसी समय उतर कर चला गया।

उस समय दिन ढल चुका था। शेखर के घर में घुसते ही वहाँ से छाती फाड़ कर रोने की आवाज सुनाई दी। विधवा-वेशधारिणी गुरुचरण की स्त्री के पास जाकर वह जमीन पर बैठ गया और धोती के पल्ले से अपनी भींगी हुई आँखें पोंछने लगा।—केवल गुरुचरण के लिये ही नहीं, अपने पिता के शोक से वह फिर एक बार अभिभूत हो गया।

सन्ध्या समय ललिता आई और दिया जला कर चली गई। गले में आंचल डालकर उसने दूर से शेखर को प्रणाम किया और क्षण भर रहकर वह धीरे-धीरे चली गई। शेखर सत्रह

गुरुचरण के कलकत्तेवाले मकान में जो किरायेदार थे उन के द्वारा भुवनेश्वरी को बीच-बीच में उनका समाचार मिल जाया करता था। गुरुचरण के मरने की खबर भी उन्हें मिल गई।

इसके कुछ ही दिनों बाद एक बड़ी विकट घटना घटी— नवीनराय की एकाएक मृत्यु हो गई। भुवनेश्वरी दुःख और शोक से पागल-सी होकर बड़ी बहू को गृहस्थी का सारा भार सौंप, काशी चली गई। कह गई,—'आगामी वर्ष सब कुछ ठीक हो जाने से मैं आकर शेखर का व्याह कर जाऊँगी।

नवीन राय ने खुद ही विवाह सम्बन्ध ठीक किया था और अब तक वह हो भी जाता; पर अचानक उनके स्वर्ग सिधारने से साल भर के लिये रुकना पड़ा। लेकिन कन्या-पक्ष वाले अब अधिक देर नहीं कर सकते थे, इसलिये वे कल आकर लड़के को 'आशीर्वाद' दे गये हैं। इसी महीने में व्याह होगा, इसीसे आज शेखर अपनी मा को लाने के लिये काशी जा रहा है। वह अपनी आलमारी में से सब चीज-वस्त्र निकाल बाक्स में सजा रहा था कि सहसा उसे ललिता की याद आ गई क्योंकि वही यह सब काम किया करती थी।

तीन साल से अधिक हो गये, वे सब यहाँ से चली गई थीं। इस बीच में उसे उनका कोई भी समाचार न मिला था। उसने समाचार पाने की चेष्टा भी न की थी, और शायद उसे अब कोई दिलचस्पी भी न रही थी। ललिता पर धीरे धीरे उसे घृणा-सी होती जा रही थी। लेकिन आज एकाएक उसके मन में आया कि, यदि किसी प्रकार भी उसकी कोई खबर मिल जाती तो अच्छा होता! यद्यपि वह जानता था कि सब अच्छे ही होंगे, कारण गिरीन्द्र के पास रुपया है, फिर भी वह सुनने की

बात चीत नहीं हुई शेखर ? ऐसा लड़का दुनियाँ में मिलना अति कठिन है।"

शेखर ने कहा—"इस विषय में मुझे रत्ती भर सन्देह नहीं है। इससे मेरी बातचीत भी हो चुकी है।" इतना कह कर शेखर जल्दी से बाहर की ओर चला गया। लेकिन बाहर की बैठक के सामने आकर उसे एकाएक रुक जाना पड़ा।

अन्धेरे में दरवाजे की ओट में ललिता खड़ी थी, वह बोली,—"क्या माँ को आज ही लाने जा रहे हो ?"

शेखर ने कहा—'हाँ !'

"वे क्या बहुत अधिक घबरा गई हैं ?"

"हाँ, वह पागल के समान हो रही हैं।"

"तुम्हारी तबीयत कैसी है ?"

'अच्छी है।"—कहकर शेखर झटपट वहाँ से चला गया। सड़क पर पहुँचते पहुँचते उसका सारा बदन नीचे से ऊपर तक मारे लज्जा और और घृणा के सिहर उठा। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि ललिता के पास खड़ा होने से उसका शरीर मानो अपवित्र हो गया हो। घर पहुँच कर उसने जैसे तैसे करके अपना बक्स भर कर तैयार कर दिया और गाड़ी में देर है जान कर खाटपर लेट रहा। ललिता की विष-भरी याद को जला कर भस्म कर देने की प्रतिज्ञा करके हृदय के कोने कोने में उसने घृणा का दावानल जला दिया। जलन की पीड़ा में उसने उसका मन ही मन अकथ्य शब्दों में तिरस्कार किया, यहाँ तक कि ललिता को कुलटा कहने में भी संकोच नहीं हुआ। गुरुचरण की स्त्री ने उन बातों ही में कहा था कि लड़की का ब्याह कोई आनन्द का ब्याह थोड़े ही था, इसीसे किसी को

वर्ष की युवती स्त्री पर आँख उठा कर न देख सका और न उसे बुला कर बात-चीत ही कर सका। फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से वह जितनी दिखाई दी थी उससे मालूम हुआ कि वह पहले से बहुत बड़ी और दुबली हो गई है।

बहुत देर तक रोने-धोने के बाद गुरुचरण की विधवा स्त्री ने जो कुछ कहा, उसका सार यही था कि मकान को बेंच कर वे मुंगेर में अपने जवांई के पास रहेंगी, यही उनकी इच्छा है। वह मकान बहुत दिनों से शेखर के पिता खरीदना चाहते थे, इस समय उचित मूल्य देकर खरीद लेने से मकान घर का घर में ही रह जायगा, उनको किसी प्रकार का दुःख न होगा, और भविष्य में अगर कभी वे इधर आयेंगी तो दो एक दिन इस घर में रह भी जा सकती हैं—इत्यादि। शेखर ने कहा कि माँ से पूछ कर यथासाध्य इसके लिये चेष्टा करूँगा। इस पर उन्होंने आँसू पोंछते हुए कहा,—"जीजी क्या इस बीच में आयेंगी नहीं शेखर ?"

शेखर ने उन्हें जताया कि मैं आज रात में ही उन्हें लेने जा रहा हूँ। इसके बाद उन्होंने एक एक कर सब छोटी-मोटी बातें जान लीं। शेखर का कब विवाह होगा, कहाँ बारात जायगी, कितने हजार रुपये नगद और कितने गहने मिलेंगे, जेठ जी कैसे मरे थे; जीजीने क्या क्या किया इत्यादि बहुत सी बातें पूछीं और उनका उत्तर सुना।

जब कुल बातें समाप्त कर शेखर वहाँ से हटा है, तब चाँदनी फैल चुकी थी। उसी समय गिरीन्द्र ऊपर से उतर कर शायद अपनी बहन के घर जा रहा था। गुरुचरण की विधवा स्त्री उसे देखकर शेखर से बोली,—'मेरे भाई के साथ तुम्हारी

१२

मा को लेकर शेखर जिस दिन लौटा, उस दिन भी उसके व्याह में दस बारह दिन की देर थी।

उसके तीन चार रोज बाद, एक रोज सवेरे ललिता शेखर की मा के पास बैठी किसी वर्तन में कोई चीज रख रही थी। शेखर को यह बात मालूम न थी इसलिये वह किसी खास काम से 'मा' कह कर अन्दर घुसा ही था कि सहसा भौचक्का-सा होकर खड़ा हो गया। ललिता मुँह नीचा किये काम करने लगी।

मा ने पूछा—"क्या है रे ?"

"नहीं, अभी रहने दो" कह जल्दी से बाहर की ओर निकल गया। ललिता का चेहरा तो उसे दिखाई नहीं दिया, पर उसके दोनों हाथों पर उसकी निगाह पड़ गई। हाथ बिलकुल सूने थे केवल दो-दो काँच की चूड़ियाँ पड़ी हुई थीं। शेखर मन ही मन क्रोधित होकर कहने लगा—"यह भी एक प्रकार का ढोंग है !" यह उसे अच्छी तरह मालूम था कि गिरीन्द्र पैसेवाला है

कुछ ख्याल नहीं रहा, नहीं तो ललिता ने उस समय तुम सबों को पत्र लिखने के लिये कहा था। ललिता की यह हिमाकत भरी बात मानो सारी आग के ऊपर लहराती हुई लौ बन कर लपटें लेने लगी।

सास जी का मनोभाव तो आपने जान ही लिया होगा—अपना मकान वे आपलोगों के हाथ बेच देना चाहती हैं। मेरी मारफत आज उन्होंने कहला भेजा है कि शीघ्र ही इसका प्रबन्ध हो जाय तो वे इसी महीने में मुँगेर चली जायँ।

गिरीन्द्र को देखते ही शेखर के मनमें एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ था। उसकी बातें उसे जरा भी नहीं सुहा रही थीं। उसने अप्रसन्न मुख से कहा,—"सो तो ठीक है, लेकिन पिता जी के बाद अब भइया ही मालिक हैं, आपको उनसे ही कहना चाहिये।

गिरीन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा,—"सो तो हम लोग भी जानते हैं, लेकिन उनसे आप ही का कहना ठीक होगा।

शेखर ने उसी प्रकार उत्तर दिया,—आप कहें, तो भी हो सकता है, उस ओर के अभिभावक तो इस समय आप ही हैं।

गिरीन्द्र बोला—"मेरे कहने की आवश्यकता समझें तो मैं ही कह दूँ, लेकिन कल बहन जी यह बात कह रही थीं कि आप जरा ध्यान दें तो काम बड़ी जल्दी हो जायगा।

शेखर अबतक एक मोटे तकिये के सहारे बैठा हुआ बातें कर रहा था, अब उठकर बैठ गया और बोला—"कौन कह रही थी?"

गिरीन्द्र बोला—"बहन जी ललिता—ललिता बहन जी कह रही थीं—"

गिरीन्द्र के मुख से उपरोक्त शब्द सुनते ही शेखर मारे आश्चर्य के हतबुद्धि-सा हो गया। उसके बाद गिरीन्द्र ने क्या क्या कहा इसका एक शब्द भी शेखर के कान तक न पहुँचा। कुछ देर तक विह्वल दृष्टि से गिरीन्द्र के चेहरे की ओर देखता रहा, फिर एकाएक बोल उठा,—"मुझे क्षमा कीजियेगा, गिरीन्द्र बाबू ललिता के साथ क्या आप का विवाह नहीं हुआ?"

इसलिये उसकी स्त्री के हाथ विना गहनों के सूने सूने होने का कोई कारण उसे खूब ध्यान के साथ ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला।

उस दिन सन्ध्या के समय जल्दी जल्दी नीचे उतर रहा था और ललिता भी उसी सीढ़ी से ऊपर जा रही थी, वह एक ओर दीवार के साथ सटकर खड़ी हो गई। लेकिन शेखर के पास आते ही अत्यन्त संकोच के साथ उसने बहुत ही धीरे से कहा,—"तुम से एक बात कहनी है!"

क्षण-भर स्थिर रहकर शेखर आश्चर्य भरे स्वर में बोला,—"किससे? मुझसे?" ललिता ने पहले की तरह ही मीठे स्वर में कहा,—"हाँ, तुमसे!"

"मुझ से तुम्हें क्या कहना है!" कहकर शेखर पहले की अपेक्षा और भी जल्दी नीचे उतर गया।

ललिता वहीं थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ी रही और छोटी सी एक साँस छोड़ कर धीरे धीरे ऊपर चली गई।

दूसरे दिन अपने बाहर के बैठके में बैठा शेखर उस रोज का अखबार पढ़ रहा था। पढ़ते पढ़ते उसने अत्यन्त आश्चर्य के साथ मुँह उठाकर देखा कि गिरीन्द्र उसके कमरे की तरफ आ रहा है। कमरे में पहुँच, नमस्कार कर गिरीन्द्र एक कुरसी खींच कर शेखर के पास बैठ गया। अखबार को हाथ से रख नमस्कार का उत्तर देता हुआ शेखर जिज्ञासुओं की तरह उसकी ओर मुँह करके बैठ गया। दोनों की जान पहचान आँखों आँखों में अवश्य थी, लेकिन बात चीत कभी नहीं हुई थी, और इसके लिये दोनों में से किसी ने आग्रह भी कभी नहीं किया था।

गिरीन्द्र ने एकाएक काम की बात छेड़ दी। बोला,—"एक खास जरूरी काम के लिये आपको कष्ट देने आया हूँ। मेरी

धीरे-धीरे बोला,—"इस बात का उत्तर देना आवश्यक है। इसके अलावा स्नेह चाहे कितना भी गहरा क्यों न हो, समझ-कर कोई पराई विवाहिता स्त्री से ब्याह नहीं कर सकता,—खैर जाने दो, बड़ों के सम्बन्ध में मैं ऐसी चर्चा नहीं करना चाहता।" उसके बाद वह हँसता हुआ उठ खड़ा हुआ, बोला,—"आज मैं जा रहा हूँ, फिर किसी रोज मिलूँगा।" इसके बाद नमस्कार करके वह वहाँ से चला गया। गिरीन्द्र के प्रति शेखर शुरू से ही विद्वेष रखता आया है, और इधर तो उसका विद्वेष अत्यन्त घृणा के रूप में परिणत हो गया था, किन्तु आज उसके चले जाते ही शेखर उठकर पृथिवी से बार बार अपना सिर छुआ कर इस अपरिचित ब्रह्मसमाजी युवक के लिये बार बार नमस्कार करने लगा। आदमी चुपचाप कितना बड़ा स्वार्थ-त्याग कर सकता है, हँसते हँसते अपने वचनों का किस कठिनता के साथ पालन कर सकता है,—यह बात आज शेखर ने अपने जीवन में पहले पहल देखी।

दो पहर के बाद भुवनेश्वरी अपने कमरे में फर्श पर बैठी ललिता की मदद से नये कपड़ों का ढेर सम्हाल कर रख रही थी, शेखर अन्दर आकर उसके बिस्तरे पर बैठ गया। वह ललिता को देख, घबरा कर भागा नहीं। माँने उसे देखकर कहा,—"क्या है रे?"

शेखर ने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप बैठ कपड़ों की थाक लगाना देखता रहा। थोड़ी देर बाद बोला,—"यह क्या हो रहा है माँ?"

भुवनेश्वरी ने कहा—"नये कपड़ों में से किसी को क्या देना है, हिसाब लगाकर देख रही हूँ। शायद और भी मँगाने पड़ेंगे, क्यों बिटिया?"

गिरीन्द्र ने दांतों के नीचे जबान दबा कर कहा,—"जी नहीं—उनके घर में तो आप सभी को जानते हैं—काली के साथ मेरा—"

"मगर ऐसी बात तो नहीं थी।"

गिरीन्द्र ने ललिता के मुँह से सब हाल सुन रखा था, उसने कहा,—"नहीं, ऐसी बात नही थी, लेकिन अब यह ठीक है।

गुरुचरण बाबू अन्त समय में मुझ से अनुरोध कर गये थे कि मैं अन्यत्र कहीं भी विवाह न करूँ। मैंने भी उन्हें इस बात का पक्का वचन दिया था। उनकी मृत्यु के बाद बहन जी ने मुझ से सब बातें समझा कर कहीं—हालाँ कि यह सब हालात और कोई न जानता था कि उनका ब्याह पहले ही हो चुका है और उनके पति जीवित मौजूद हैं। इस बात पर शायद दूसरा कोई विश्वास न करता, लेकिन मैंने उनकी किसी भी बात पर विश्वास नहीं किया। इसके अलावा स्त्रियों का तो एक बार छोड़कर दुबारा ब्याह हो ही नहीं सकता,—अरे यह क्या?

गिरीन्द्र बाबू की बात सुनते सुनते शेखर की दोनों आँखें पानी से भर आई थीं, अब उन आँखों में से गिरीन्द्र के सामने ही धारा बह निकली, परन्तु उधर उसका कुछ ख्याल ही न था, उसे याद भी न आया कि पुरुष के सामने पुरुष का इस प्रकार कमजोरी जाहिर करना अत्यन्त लज्जा की बात है।

चुपचाप बैठा गिरीन्द्र उसकी तरफ देखता रहा। उसके मनमें सन्देह तो था ही,—आज उसने ललिता के पति को पहचान लिया। शेखर ने आँखें पोंछ कर भारी गले से कहा,—"परन्तु आप तो ललिता से स्नेह करते हैं?"

गिरीन्द्र के चेहरे पर प्रच्छन्न पीड़ा की गहरी छाया-सी दिखाई ी, लेकिन दूसरे ही क्षण वह मन्द-मन्द मुस्कराने लगा। वह

शेखर ने मीठे स्वर में कहा,—"और किसी दिन सुनना मा, और किसी रोज बताऊँगा।"

"और किसी दिन बतायेगा!" उसने कपड़ों की थाक एक ओर रखते हुए कहा,—"तो आज ही मुझे काशी भेज दे, ऐसे घर में मैं एक रात भी रहना नहीं चाहती।

शेखर नीचे सिर किये बैठा रहा। भुवनेश्वरी और भी उत्तेजित होकर कहने लगी,—"ललिता भी मेरे साथ जाना चाहती है, देखूँ इसके लिये अगर कोई बन्दोबस्त कर सकी—

अब की बार शेखर सिर उठाकर हँस पड़ा, और बोला—तुम साथ ले आओगी, फिर उसका बन्दोबस्त किसके साथ करोगी मा? तुम्हारी आज्ञा से बढ़ कर बड़ी बात उसके लिये और क्या है?

लड़के के मुँह पर हँसी देख कर माता को कुछ आशा-चिह्न दिखाई दिये. ललिता की तरफ देख कर बोली,—"सुन ली बेटी इसकी बात? यह समझता है कि मैं चाहूँ तो, तुम्हें जहाँ खुशी, ले जा सकती हूँ।—तुम्हारी मामी से नहीं पूछना पड़ेगा?"

ललिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। शेखर की बात-चीत के ढंग से वह मन ही मन अत्यन्त संकुचित होती जा रही थी।

शेखर ने अन्त में कह ही डाला,—"उससे कहना चाहो तो कह दो, यह तुम्हारी इच्छा है। लेकिन तुम चाहोगी वही होगा मा,—"यह मैं भी समझता हूँ और जिसे ले जाना चाहती हो, वह भी जानती है। यह तुम्हारी पतोहू है, मा!" इतना कह कर शेखर ने सिर झुका लिया।

भुवनेश्वरी आश्चर्य के मारे दंग रह गई। मा के सामने सन्तान का यह परिहास, एक टक शेखर की ओर देखकर उसने कहा,—"क्या कहा? यह कौन है मेरी?"

शेखर मुँह न उठा सका, परन्तु धीरे से बोला,—"कह

ललिता ने गरदन हिलाकर अपनी स्वीकारोक्ति दे दी।

शेखर हँसता हुआ बोला,—"अगर मैं ब्याह न करूँ तो ?"

भुवनेश्वरी हँस पड़ी और बोली,—"यह तुम कर सकते हो, तुम में ऐसे गुणों की कमी नहीं है।"

शेखर हँसता हुआ बोला—"सो ही शायद होगा, मा।"

मा गम्भीरता से कहने लगी,—"यह कैसी बात कह रहा है तू, ऐसी खराब बात जबान पर मत ला।"

शेखर बोला,—"इतने दिनों से तो जबान पर नहीं लाया था,—लेकिन अब बिना कहे महापातक होगा, मा !"

समझ न सकने के कारण भुवनेश्वरी शंकित चेहरे से शेखर की ओर देखने लगी।

शेखर ने कहा,—"तुम अपने इस लड़के के अनेक कसूर माफ कर चुकी हो, इस कसूर को भी माफ करना मा, सचमुच ही मैं यह ब्याह न करूँगा।"

पुत्र की बात सुन और चेहरे की ओर देखकर सचमुच ही भुवनेश्वरी उत्तेजित हो उठी, लेकिन उस भाव को दबा कर बोली,—"अच्छा, अच्छा मत करना। अभी जा तू यहाँ से, मुझे परेशान मत कर शेखर,—"मुझे बहुत काम करना है !

शेखर और एक बार हँसने का व्यर्थ प्रयास करके सूखे स्वर में बोला,—"नहीं मा, सच्ची बात कहता हूँ तुमसे, यह ब्याह नहीं हो सकेगा।"

"क्यों क्या यह बच्चों का खेल है ?"

"खेल नहीं है इसी से तो कह रहा हूँ।"

अब भुवनेश्वरी अत्यन्त भयभीत हो उठी, और गुस्से भरी आवाज में बोली,—"क्या हुआ है, मुझे समझा कर बता, यह सब बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।"